ॐ श्रीकृष्णाय नमः ॐ

वर्ष ४

भक्ति

संख्या ११

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

श्रावण सम्वत् १९८७

मदन दहन

MAHARATHI PRESS, DELHI.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका ।

वर्ष ४ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, श्रावण पूर्णिमा सं० १९८७ | अङ्क ११

वेदोपदेश

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशोदिशश्च ।
उपस्थाय प्रथमजमृतस्यात्मनात्मानमभिसंविवेश ॥१॥

विद्वान् सम्पूर्ण भूतों को ब्रह्म रूप जान कर सब लोकों को ब्रह्म रूप जान कर, सम्पूर्ण दिशाओं विदिशाओं को ब्रह्मरूप जान कर, प्रथम उत्पन्न हुई वेद वाणी को सेवन करके जीव रूपसे यज्ञ के अधिष्ठाता परमात्मा में प्रवेश करता है ॥ १ ॥

परिद्यावापृथिवी सद्य इत्वापरिलोकान्परिदिशः परिस्वः ।
ऋतस्य तंतु वितंतंविचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् ॥ २ ॥

पृथिवी तथा आकाश को शीघ्र ही अपने स्वरूप से व्याप्त करके, लोकों को व्याप्त करके, दिशाओं को व्याप्त करके, स्वर्ग को व्याप्त करके, यज्ञ तन्तु को विस्तृत अनुष्ठान द्वारा समाप्त करके, उस को देखता है, वही होता है, वही था ॥ २ ॥

सद्दसस्पतिमद्भुतां प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिमेधा मयासिष स्वाहा ॥३

गृह के स्वामी, अद्भुत, इन्द्र के प्रिय मेधा के मांगने वालों को प्रार्थनीय द्रव्य दान तथा मेधा को मांगते हैं, स्वाहा ॥ ३ ॥

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ ४ ॥

हे भगवन् ! जिस बुद्धि की देव गण तथा पितृगण उपासना करते हैं, उस बुद्धि से मुझे सम्पन्न कीजिये, स्वाहा ॥ ४ ॥

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः मेधामिंद्रश्च वायुश्च मेधां ददातु मे स्वाहा ॥ ५ ॥

वरुण मुझे बुद्धि प्रदान करे, अग्नि बुद्धि दे, इन्द्र तथा वायु बुद्धि दे, विधाता मुझे बुद्धि दे, स्वाहा ॥ ५ ॥

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रञ्चोभे श्रियमश्नुताम्। मयि देवा दधातु श्रिय मुत्तमां तस्यैते स्वाहा ॥ ६ ॥

यह ब्राह्मण तथा क्षत्रिय जाति मेरी लक्ष्मी को भोगें, देवता उत्तम श्री दें, तुझ लक्ष्मी को स्वाहा ॥ ६

भगवद्भक्ति

[लेo श्री पूज्य भोले बाबा जी]

कथा राजा चन्द्रहास की

राजा चन्द्रहास बाल्यावस्था से ही परम भगवद्भक्त हुये, महाभागवतों में इनकी गणना है। अब तक इनका यश चांदनी के समान शास्त्रों में विस्तृत है। कथन अश्वमेध में लिखा है कि केरल देश के मेधावी नाम के राजाके यहां चन्द्रहास का जन्म हुआ। इनके एक पैर में छः अंगुली थी। सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार यह अरलक्षण है। इनके जन्म के थोड़े दिन बाद केरल देश पर एक शत्रु चढ़ आया और उस युद्ध में मेधावी काम आया। चन्द्रहास की माता सती होगई। धाय चन्द्रहास को लेकर कुंतलपुर में चली आई, कुंतलपुर के प्रधान का नाम धृष्टबुद्धि था। चन्द्रहास सहित धाय उसके यहां रहने लगी, पश्चात् धाय भी मर गई और पांच वर्ष के अनाथ चन्द्रहास नगर में घूमने लगे, जो कोई कुछ दे देता, उसी से उदर पालन कर लेते। एक दिन नारद जी

आये और शालिग्राम जी की प्रतिमा देकर कहने लगे कि जो कुछ भोजन आदि लिया करो, वह इस प्रतिमा को दिखला कर किया करना ! यह कह कर नारद जी चले गये और चन्द्रहास जी उनकी आज्ञानुसार वर्तने लगे। जो कुछ काम करते मूर्ति से पूछ कर करते और मूर्ति को मुख में रक्खे रहते। थोड़े दिनों में इनको भगवत् में बहुत ही प्रीति होगई।

एक दिन धृष्टबुद्धि के घर ब्रह्मभोज था और बहुत से ब्राह्मण एकत्र हुये थे। धृष्टबुद्धि ने ब्राह्मणों को पूछा कि मेरी लड़की को वर कौन और कैसा मिलैगा तो ब्राह्मणों ने चन्द्रहास जी को बताया कि यह लड़का इसका पति होगा प्रधान को सुनकर बड़ी ग्लानि हुई कि हाय ! मेरी लड़की दासी पुत्र की भार्या होगी। वध करने वालों को बुलाकर उसने आज्ञा दी कि इस लड़के को जंगल में लेजाकर मारडालो ! वध करने वाले चन्द्रहास जी को जंगल में लेगये और प्रधान की आज्ञा सुनाकर कहने लगे अब तुम्हारा रक्षक कौन है ? चन्द्रहास जी को अपने मरने का किंचित् भी शोच न हुआ, कहने लगे एक घड़ी धैर्य धरो ! इतना कह कर शालिग्राम जी का पूजन किया और वधिकों को वध करने का संकेत करके भगवद्ध्यान की समाधि लगाली ! भगवत् भक्तरक्षक महाराज ने निर्दयी वधिकों के हृदय में ऐसी दया उत्पन्न करदी कि वे प्रधान के दिखलाने के लिये अधिक अंगुली काट लेगये और चन्द्रहास जी को जंगलमें ही छोड़गये। सच है जिनका राम रखवाला, उनका कौन है मारन वाला। चन्द्रहास जी तीन दिन तक भगवद्ध्यान में मग्न और आनन्दित जंगल में फिरते रहे ! जब इनको धूप लगती तो पक्षी अपने परों से इनके ऊपर छाया करते और रात्रि को हिंसक व्यापारी इनकी रक्षा के निमित्त चौकी पहिरा देने आते ! संयोग वश चन्द्रावती नगरी का कलिन्द-नाम का राजा शिकार खेलता हुआ उस बन में आया और चन्द्रहास जी को अपने घर ले गया। राजा के कोई सन्तान नहीं थी, इनको बेटा समझकर उसने सब विद्यायें पढ़ा कर सब प्रकार से युक्त कर दिया. पीछे राज्यतिलक करके संपूर्ण राज्य सौंप कर आप भगवद्भजन करने लगे।

यह कलिन्द राजा राज्य कुंतलपुर का कर देने वाला था। जब समय पर कर न पहुंचा तो धृष्टबुद्धि प्रधान सेना सजा कर युद्ध करने आया। यह सुनकर राजा कलिन्द उस से मिलने गया और बड़े सत्कार मान सहित उसको नगर में लाया। चन्द्रहास जी से भेट कराई और राज्य देने का सब वृत्तान्त सुनाया धृष्टबुद्धि चन्द्रहास जी को पहिचान गया और उनके मारने का उपाय सोचने लगा। अन्तमें उसे यह उपाय सूझा कि चन्द्रहास जी को कुन्तलपुर भेज कर वहां मरवा डालना चाहिये। ऐसा विचार कर वह राजा कलिन्द को धमकाने लगा कि तुमको हमारे राजा की आज्ञा बिना चन्द्रहास को राज्यतिलक कर देना उचित नहीं था। अब मैं अपने मदन नामक पुत्र के नाम पत्र लिख कर चन्द्रहास को कुन्तलपुर भेजता हूं कि वह राजा से सिफारिश करके राज्यतिलक अंगीकार करादें। इतना कह कर उसने चन्द्रहास जी को पत्र लिख कर दिया और वे पत्र लेकर कुन्तलपुर की तरफ चल दिये। कुन्तलपुर के निकट प्रधान के बाग में पहुंच उन्होंने वहां स्नान किया, भगवत् का पूजन किया, भगवत् का प्रसाद भोजन करके परिश्रम के कारण वे सोगये। संयोग वश धृष्टबुद्धि की विषया नामा कन्या उसी दिन बाग की शोभा देखने को आई हुई थी। सखियों से अलग होकर टहलती२ जहां चन्द्रहास जी

सो रहे थे, वहां आई, चन्द्रहास जी का रूप देख कर आसक्त होगई और भगवत् से प्रार्थना करने लगी कि यह पुरुष मेरा पति हो ! इतने ही में उसकी दृष्टि चन्द्रहास जी की कमर की ओर गई तो चिट्ठी दिखाई दी। विषया ने चिट्ठी निकाल कर पढ़ी, उसमें लिखा था, 'हे मदन !' चिट्ठी ले जाने वाले को तुरन्त विष दे देना, यदि विलम्ब किया तो मेरे क्रोध का हेतु होगा ! विषया चिट्ठी पढ़कर इस प्रकार विचारने लगी 'हाय ! यह मनोहर युवक वृथा बिना अपराध मारा जायगा ! फिर विचार आया कि मेरा बाप बहुत दिनों से मेरे निमित्त सुन्दर पुरुष की खोज कर रहा है और चलते समय मेरी माता से कह भी गया था कि मैं बहुत शीघ्र ही विषया का विवाह करने वाला हूं, ऐसा अनुमान होता है कि पिता ने इस पुरुष को मेरे निमित्त भेजा है और जल्दी में 'विष'के पीछे 'या' लिखना भूल गया है, इसलिये 'या' अक्षर बढ़ा देना चाहिये। इतना विचार कर विषया अपनी आंखों के काजल की स्याही से 'या' बना कर पत्री चन्द्रहास जी की कमर में रख कर चली गई।

चन्द्रहास जी मदन के पास पहुंचे और पत्री दी। मदन बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसी घड़ी चन्द्रहास जी का विवाह अपनी बहिन के साथ कर दिया। जब प्रधान को अपने बेटे के पत्र से यह वृत्तांत मालूम हुआ तो वह बहुत ही खिन्नमन हुआ और दुःख से दुःखी हो उसी क्षण वहां से चल कर अपने घर आया और अपने लड़के को धिक्कार देने लगा। मदन ने उसकी पत्री आगे रख दी और कहा कि आपने जो लिखा, वह ही मैंने कर दिया, मेरा इसमें क्या अपराध है ? तब प्रधान ने मन में विचार किया कि लड़की विधवा हो तो होजाय परन्तु चन्द्रहास को वध करना उचित है। ऐसा विचार कर उसने वधिकों को बुलाकर आज्ञा दी कि प्रभात समय जो कोई दुर्गा भवन में आवे उसको मार डालना और चन्द्रहास जी से कहा कि हमारे कुल में विवाह के पीछे दुर्गा पूजन करने का नियम है, इसलिये तुम प्रभात ही दुर्गा पूजन करने जाना ! इधर धृष्टबुद्धि ने तो यह उपाय रचा और भगवत् की यह इच्छा हुई कि कुन्तलपुर का राज्य भी चन्द्रहास जी को मिल जाय, इसलिये कुन्तलपुर के राजा के मन में यह ज्ञान दिया कि राज्य और शरीर दोनों नाशवान् हैं, भगवद्भजन से अधिक दूसरा कोई उत्तम काम नहीं है इसलिये राज्य तो प्रधान के जामातृ चन्द्रहास को दे देना चाहिये क्योंकि वह इसका अधिकारी और योग्य है और तुमको शेष वय भगवद्भजन में लगाना उचित है। प्रभात को राजा ने धृष्टबुद्धि के पुत्र मदन को बुला कर कहा कि हम चन्द्रहास को राज तिलक देना चाहते हैं, उसको शीघ्र बुला लाओ ! मदन इस बात को सुन कर राज्य हमारे घर में आता है, यह समझ कर दिल में फूला नहीं समाया और चन्द्रहास जी के पास आकर उनको तो राजा के पास भेज दिया और आप दुर्गा भवन में पूजा करने चला गया। राजा ने तुरन्त चन्द्रहास जी को राज्य तिलक कर दिया और प्रधान का पुत्र मदन दुर्गा भवन में जाकर वधिकों के हाथ से मारा गया। मदन की मृत्यु सुनकर धृष्टबुद्धि अपने शिर पर धूल डालता हुआ मदन के शव के पास पहुंच कर पत्थर से से शिर मार कर मर गया। चन्द्रहास जी ने जब यह वृत्तान्त सुना तो दया और करुणा के विह्वल होकर दुर्गा भवन में आये और उन सब के जिलाने के लिये दुर्गा जी स्तुति की। जब कुछ उत्तर न मिला तो तलवार निकाल कर अपना घात करने को तैयार हुये, दुर्गा महारानीने

प्रकट होकर हाथ पकड़ लिया और कहा कि धृष्टबुद्धि शठ था और तुम्हारे मारने के लिये सदा उद्यत रहता था। अपने दुष्ट कर्म के फल से पुत्र सहित मारा गया, अब जिला देना उचित नहीं है! चन्द्रहास जी ने विनय किया कि सत्य है परन्तु आपको यह भी तो सामर्थ्य है कि उनके मन को निर्मल करके भगवद्भक्त बनादें कि फिर किसी के साथ दुष्टता न करें। इस वचन से दुर्गा महारानी प्रसन्न हुई और दोनों को जिला दिया। तब प्रधान ने भगवद्भक्ति और भक्तों का प्रताप देखा तो विश्वास युक्त हुआ और चन्द्रहास जी के चरणों में गिर कर शरण हो गया, चन्द्रहास जी ने तीन सौ वर्ष राज्य किया। भगवद्भक्ति का ऐसा प्रसार किया कि सब देश भगवद्भक्त होगया। जब राजा युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया और चन्द्रहास जी ने घोड़े को पकड़ लिया, तो भगवान् श्री कृष्ण महाराज ने यह समझ कर कि भक्त से कोई जीत न सकेगा, अर्जुन से मेल करा के घोड़ा छुड़वा दिया। पीछे चन्द्रहास जी अपने बड़े पुत्र को राजतिलक देकर आप राजा युधिष्ठिर के यज्ञ में आमिले।

हे मंसाराम! अब विचारना चाहिये कि भक्तों के निमित्त कैसी शिक्षा है प्रथम तो प्रतिमा निष्ठा का फल, दूसरे यह कि भगवद्भक्त मृत्यु से भी नहीं डरते, तीसरे यह कि कठिन से कठिन आपत्ति के आने पर भी भगवद्भजन नहीं छोड़ते, चौथे यह कि यदि कोई उनके साथ दुष्टता करता है, तो उसको भी सुख देते हैं। सिवाय इसके यह बात तो विख्यात है कि भगवत् अपनी प्रसन्नता से भक्त की प्रसन्नता अधिक मानते हैं, तभी तो स्वयं आकर चन्द्रहास जी से यज्ञ के घोड़े को छुड़ाया, मेल कराया अपना बल नहीं दिखलाया, नहीं तो क्षण भर में करोड़ों ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और लय कर सक्ते हैं।

पद–चन्द्रहास की गाथा पढ़िये, सुखद सिखावन लीजे।
गुरुवचनन पर श्रद्धा करके, आज्ञा पालन कीजे॥
विपति मांहि व्याकुल मत हूजे, हरि चरणन मन दीजे।
वैरी का भला विचारो, भय न मृत्यु से कीजे॥
वधिकों ने तलवार उठाई, भय नहिं किंचित् आया।
भगवत् चरणन ध्यान लगाया, भगवत् प्राण बचाया॥
चन्दनवती राज्य दिलवाया, फिर विवाह करवाया।
वैरिन कूं पर धाम पठाया, कुन्तलपुर दिलवाया॥
चन्द्रहास की भक्ति देख कर, दुर्गा दर्शन दीन्हा।
पिता पुत्र को जीवन देकर, भगवत् सन्मुख कीन्हा॥
घोड़ा छीन यज्ञ का लीन्हा, भगवत् आप छुड़ाया।
चन्द्रहास शुभ गाथा लिख कर, 'भोला' अति सुखपाया॥

कथा नामदेव की।

नामदेव जी विष्णु संप्रदाय में ज्ञानदेव जी के शिष्य भक्ति के प्रकाश करने को सूर्य समान हुये। बालपन में ही अपनी भक्ति के प्रभाव से इन्होंने भगवत् को वश कर लिया था। भगवत् अंश से इनका जन्म हुआ था। उनका वृत्तांत इस प्रकार है कि पांडरपुर में वामदेव नाम का एक छीपी भगवद्भक्त था। इसकी लड़की बाल विधवा हो गई थी। जब वह बारह वर्ष की हुई तो वामदेव ने भगवत् सेवा पूजन की शिक्षा देकर कहा कि जो तेरे हृदय की प्रीति होगी, वह सब तेरा मनोरथ भगवत पूर्ण कर देंगे। उस लड़की ने उसी दिन से अति भक्ति और विश्वास से ऐसी पूजा की थोड़े ही दिनों में भगवत् प्रसन्न हो गये। यहां तक कि युवावस्था आने पर उसको काम की इच्छा हुई, तो वह भी भगवत् ने पूर्ण की और उस लड़की के गर्भ रह गया।

समस्त संसार और बिरादरी में यह बात विख्यात हुई। लड़की से माताने पूछा कि यह क्या तेरी अभाग्यता है? उसने कहा कि तुमने कहा था कि सब इच्छा तेरी भगवत् पूर्ण करेंगे जो कुछ हुआ है भगवत् से हुआ है। वामदेव इस सुख समाचार से ऐसे आनंदित हुये कि शरीर में फूले न समाये और जब लड़का उत्पन्न हुआ तो उन्हों ने सब धन संपत्ति उसके जन्मोत्सव में लुटा दिया। नामदेव नाम रक्खा और प्राण से अधिक प्यारा समझने लगे।

हे मसाराम! अविश्वासी और अयोग्यों की शंका दूर करने के लिये पुराणों की कथाओं से अलग भगवत् का वचन स्मरण कराता हूं। भागवत् के दूसरे स्कंध में लिखा है कि निष्काम सकाम अथवा भक्ति के हेतु जो मेरा दृढ़ भाव से पूजन करते हैं, तो मैं आप ही उनकी सब कामनायें पूर्ण करता हूं। एकादश स्कंध में लिखा है कि अपने भक्तों को मुक्ति पर्यन्त सब कुछ देता हूं, संसारी कामनाओं की तो बात ही क्या है? इस बात को भी रहने दो जब कि भगवत् अपने भक्तों के हेतु अपना निजधाम छोड़ कर चले आते हैं और ऐसे शरीर धारण करलेते हैं कि बुद्धि और विचार में भी नहीं आते, तो यदि किसी काम सुख की चाहने वाले अपने भक्त की कामना पूर्ण की तो क्या आश्चर्य है? यदि भगवत् के अवतार, गोपिका, कुब्जा आदि के चरित्रों पर विश्वास है, तो स्वयं भगवत् से नामदेव का जन्म होना सर्वथा सत्य और युक्त है। कथा संक्षेप से यह है कि जन्म से ही नामदेव जी को भगवत् में प्रेम हुआ। जब दो चार वर्ष के हुये तो भगवत् आराधन के खेल खेलने लगे अर्थात् मूर्ति बना कर वस्त्राभूषण पहिनाया करते और जब उनका नाना भगवत् की सेवा और आरती किया करता तो कहा करते थे कि यह भगवत् मूर्ति मुझ को दे दो! नामदेव का नाना बालक जानकर बहाना किया करता था। एक दिन वामदेव ने नामदेव से कहा कि मैं किसी गांव को जाता हूं, चार दिन में आजाऊंगा, तुम भगवत् की पूजा करना, यदि भगवत् ने तुम्हारा भोग लगाना अंगीकार कर लिया, तो सेवा तुमको सौंप दूंगा। नामदेव जी बहुत प्रसन्न हुये और दिन गिनने लगे, नाना से नित्य जाने का दिन पूछा करते और मन में बहुत आनंदित हुआ करते। जब वह दिन आया, उनका नाना भगवत् सेवा की सब रीति समझा कर गांव चला गया। नामदेव जी को संध्या से ही भगवत् को दूध पिलाने का उत्साह था। जब गौ आने में विलम्ब हुआ तो आप ही वन में जाकर गौ ले आये, दूध पिलाने के समय से पहिले ही शीघ्रता से दूध उष्ण किया, सुगंध और मिश्री मिला कर बड़े प्रेम और उत्साह से दूध का कटोरा भगवत् के आगे ले गये परन्तु यह डर मन में रहा कि कहीं मुझ से कोई अपराध न हो गया हो, भगवत् के सामने हाथ जोड़ कर बड़ी दीनता से विनय करने लगे 'महाराज! दूध है मुझे अपना दास जान कर पान कीजिये और अपने दास को परम आनन्दित कीजिये!' भगवत् ने दूध न पिया! नामदेव लड़के थे ही, जानते थे कि जैसे सब लड़के दूध पीते हैं, इसी प्रकार भगवत् भी पीते होंगे, इसलिये भगवत् के चुप रहने से बहुत उदास हुये और अलग जाकर बहुत सोच करने लगे। जब निराश हुये तो रोने लगे और कहने लगे 'महाराज! अच्छी प्रकार गरम किया है, मिश्री बहुत डाली है! जब भगवत् ने दूध न पिया, तो रोते २ बिना खाये पिये भूखे प्यासे पड़े रहे! इस प्रकार दो

दिन व्यतीत हो गये। तीसरे दिन सवेरे इनका नाना आने वाला था, इनको ऐसी विकलता हुई कि यदि भगवन् दूध न पीयेंगे, तो उनकी सेवा मुझे न मिलेगी इसलिये दूध तैयार करके भगवन् के सामने ले गये, कई बार विनय करने पर भी जब भगवन् ने दूध न पीया तब छुरी निकाल कर अपना गला काटने को तत्पर हुये। जब भगवत् ने उनका ऐसा दृढ़ विश्वास देखा, तो एक हाथ से तो उनका हाथ पकड़ लिया और दूसरे हाथ से दूध का कटोरा उठाकर गट २ दूध पीने लगे जब कटोरे में थोड़ा सा दूध रह गया, तो नामदेव जी कहने लगे आप नित्य भर २ कटोरा पी जाते हो, मैं तीन दिन का भूखा हूं, कुछ मेरे लिये भी तो छोड़ो !' भगवन् ने हंस कर अपने अधरामृत युक्त महा प्रसाद दिया ! स्कंदपुराण का वचन यथार्थ ही है कि भगवत् न काठ की मूर्ति में हैं, न दूसरे स्थान पर हैं, केवल पुरुष के विश्वास में विराजमान् हैं, इस लिये दृढ़ विश्वास की आवश्यकता है।

सवेरे ही जब नामदेव जी का नाना आया, तो सब वृत्तांत सुन कर परमानन्द में मग्न हो गया और कहने लगा कि हम को भी तो दिखलाओ ! नामदेव जी उसी प्रकार दूध का कटोरा तैयार करके लेगये, कुछ विलम्ब हुआ तो वह ही चाकू दिखला कर कहने लगे 'यह मेरे पास है।' भगवत् तुरन्त दूध पान करने लगे ! वाह! भक्तवत्सलता, और प्रेम की रिझवारता ! जिनको वेद 'नेति नेति' कहते हैं, जिनके हेतु शिवादिक भांति २ की समाधि लगाते हैं, वे अपने भक्तों की भक्ति और प्रीति के ऐसे वशमें हैं कि उनके मनोरथ के अनुकूल सब कुछ करते हैं! इस बात की ख्याति फैलगई ! बादशाह ने बुलाकर कहा कि तुम को ईश्वर मिला है, उसे हमको दिखाओ अथवा अपनी सिद्धाई दिखाओ ! नामदेव जी ने कहा कि हम में सिद्धाई होती, तो छीपो की आजीविका क्यों करते और दिन काटते ? जो कोई साधु संत आजाता है, आधसेर आटा बांट खाते हैं, उसके प्रभाव से आपने बुला लिया है ! बादशाह बोला कि तेरी कपट की बातें कुछ नहीं सुनते, गौ मर गई है. इसको जिला दे, नहीं तो तू कतल करवा दिया जायगा ! नामदेव जी ने एक विष्णुपद बनाया, उसकी पहिली तुक यह है "विनती सुन जगदीश हमारी" ! इस विष्णु पद के सुनते ही गौ जी उठी ! बादशाह चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा कि द्रव्य, गांव, परगना जो चाहो, आज्ञा दो ! नामदेवजी बोले कि हमको कुछ नहीं चाहिये, विदा मात्र का प्रयोजन है ! बादशाह ने सोने का एक जड़ाऊ पलंग भेट दिया, उसको शिर पर रख कर चल दिये। बादशाह के भृत्य साथ चले, उनको आधे मार्ग में से लौटा दिया। राह में एक नदी थी, उसमें पलंग को डाल कर घर पहुंचे। बादशाह ने यह सुन कर यह बहाना कर कि उस के नमूने का दूसरा पलंग बनवाया जायगा, उस पलंग को मंगवाया नामदेव जी ने उस पलंग से भी उत्तम २ अगणित पलंग नदी से निकाल कर डाल दिये और आदमियों से कहा कि अपना पहिचान कर लेजाओ ! यह सुन कर बादशाह की बुद्धि चकराई और आकर चरणों में पड़ा नामदेव जी ने कहा कि किसी साधु को फिर क्लेश न देना और न कभी हम को बुलाना !

एक दिन पंढरपुर के ठाकुर द्वारे में दर्शन करने को गये। लोगों की बहुत भीड़ देख कर 'दर्शन में दुचिताई न रहे' यह विचार कर कमर में जूते बांध कर मंदिर में गये। संयोग वश किसी ने जूते का किनारा देख लिया और इनको मार कर मन्दिर

से बाहर कर दिया। नामदेव जी मंदिर के पीछे बैठ गये और विनय करने लगे कि दंड दिया वह तो उचित किया परन्तु मुझको आपके सिवाय कोई दूसरा ठिकाना नहीं है और न कुछ चाहना है यदि दर्शन और लोगों को दे रहे हैं तो कान मेरे कीर्तन की ओर दीजिये! यह विनय करके कीर्तन करने लगे; व्यङ्ग विष्णुपद सुनाये और अपनी हीनता भी प्रकट की। पहिली तुक यह है 'हीन है जाती यादव राय!' भगवत् सुनते ही करुणा से विह्वल होगये और उन्हों ने मंदिर का द्वार नामदेव जी की ओर कर दिया यह चरित्र देख कर सब चकित हो गये और महन्त आदि ने चरणों में पड़ कर अपना अपराध क्षमा कराया। उस मंदिर का द्वार अब तक दक्षिण दिशा को है।

एक दिन अचानक नामदेव जी के घर आग लग गई तो नामदेव जी ने क्या किया कि जो वस्तुयें घर में अलग रक्खी थीं, उनको भी आग में डालने लगे और विनय करने लगे कि सबको अंगीकर कीजिये! भगवत् बहुत हंसे और कहने लगे कि क्या आग में भी मुझको जानता है? कहने लगे कि यह घर आपका है, दूसरा कौन स्पर्श कर सक्ता है? भगवत् ने प्रसन्न होकर आप अपने हाथों से ऐसा सुन्दर छप्पर छा दिया कि आज तक किसी ने न देखा था! जब लोगों ने छप्पर देखा तो बड़े चकित हुये और पूछने लगे कि यह छप्पर कौन से छप्परबन्द ने छाया है और वह क्या मजदूरी लेता है? नामदेव जी बोले कि छप्परबन्द अलौकिक है, प्रथम सर्वस्व लेलेता है, पीछे दिखाई देता है!

एक बार पंढरपुर में एक साहूकार ने तुला दान किया, सारे नगर में सोना बांटा गया, किसी के कहने से उसने नामदेव जी को भी बुलाया। नामदेव जी ने दो बार कहला भेजा कि हम को द्रव्य से कुछ प्रयोजन नहीं है, तीसरी बार बुलाने से गये। साहूकार ने कहा कि थोड़ा सुवर्ण आप भी अंगीकार कीजिये, जिससे मेरा भला हो। नामदेव जी ने मन में सोचा कि जब इसका धन का गर्व दूर होगा तब इस का भला होगा! ऐसा विचार कर तुलसी दल पर भगवत् के नाम का अक्षर 'रा' लिख कर उसके बराबर सोना मांगा जैसे बली ने वामन जी से कहा था, इसी प्रकार प्रथम साहूकार इनसे कहने लगा, पीछे घर भर का सोना चढ़ादिया, तुलसी दल के बराबर न हुआ तब बाहर से मंगवा २ कर चढ़ाने लगा फिर भी बराबर न तुला तब लज्जित होगया। नामदेव जी ने विचारा कि धन का गर्व तो दूर होगया अब इसने जो पुण्य किया है, उसका गर्व भी दूर होना चाहिये यह सोच कर बोले कि तूने अपनी उमर भर में जो पुण्य किया हो, वह भी संकल्प करदे, शायद बराबर हो जाय। साहूकार ने वह भी संकल्प कर दिया परन्तु तराजू में बराबर न तुला, तब तो संकुचित होकर कहने लगा कि जो है, सोही ले जाइये! नामदेव जी बोले कि अरे अज्ञानी! यह धन हमारे किस काम का है, एक भगवत् भक्ति धन चाहिये, जिसके अधीन सब लोकों का ऐश्वर्य है। साहूकार लज्जित हो गया और विश्वास युक्त होकर भगवद्भक्त होगया!

इसके पश्चात् भगवत् ने एकादशी व्रत की परीक्षा के हेतु एक अति दुर्बल ब्राह्मण के रूप से आकर नामदेव जी से भोजन मांगा। नामदेव जी ने एकादशी व्रत जान कर भोजन न दिया। ब्राह्मण बोला कि भोजन विना अब मेरा प्राण निकलना

चाहता है, शीघ्र भोजन दे! नामदेव जी ने कहा कि आज एकादशी को न देंगे ब्राह्मण हठ करता था, नामदेवजी भी हठ कर रहे थे, इसी हठा हठी में दोनों झगड़ पड़े! शोर गुल सुन कर लोग एकत्र हो आये और कहने लगे कि रसोई बनवा कर खिला दो! नामदेव जी ने न माना। संध्या के समय ब्राह्मण मर गया, लोगों ने कहा कि नामदेव जी को ब्रह्म हत्या लगी! नामदेव जी को कुछ भय न था, ब्राह्मण की लोथ सहित चिता में बैठ कर लोगों को कहने लगे कि आग लगादो! इतने ही में भगवत् हंस पड़े और नामदेव जी का विश्वास देख कर बहुत प्रसन्न हुये। लोग यह चरित्र देख कर नामदेव जी के चरणों में पड़े।

नामदेव जी के घर पर एकादशी को जागरण हुआ करता था। हरि भक्तों को प्यास लगी। बावड़ी में एक प्रेत रहता था, इस डर से कोई पानी लेने न जा सका। नामदेव जी आधी रात को कलसा लेकर बावड़ी पर गये। प्रेत विकराल रूप धारण करके सामने आया। नामदेव जी एक पद गाने लगे, तुक इस को यह है:- 'यह आये मेरे लम्बक नाथ'।

धरती पांव स्वर्ग लौं माथो योजन भर भर हाथ॥

भगवत् उसी भूत में प्रकट हुये और नामदेव जी की कृपा से वह भूत भी भगवत् के साथ भगवत् धाम को चला गया। नामदेव जी एकादशी के जागरण में ऐसे दृढ़ प्रेमी थे कि अब तक जहां जागरण होता है, पहिले नामदेव जी का पद मंगला चरण में गाया जाता है।

नामदेव हरि भक्त अंत भगवत् से आये।
देखी सच्ची प्रीति आय भगवत् अपनाये॥
दूध पिया प्रभु आप, भक्त कूं अर्घ पिलाये।
देकर महा प्रसाद, भक्ति की कीर्ति बढ़ाये॥
भगवत् नहि हैं मूर्ति में, अन्य ठौर हू नाहिं है।
भोला! भगवत् राजते, प्रेम भक्ति के मांहि है॥
दीन्ही गाय जिवाय, पलँग नदी से काढ़ा।
फेरा मंदिर द्वारा, अग्नि में सब कुछ जारा॥
तुलसी दल धरि एक सेठ का गर्व मिटाया।
मरा क्षुधातुर विप्र, मुक्त हू जिला हंसाया॥
प्रेत पढ़ाया स्वर्ग में, नामदेव हरि भक्त वर।
भोला! ऐसे भक्त कूं, आठों अँग नमन कर॥

होते भव सिन्धु पार

[ले० श्री रमाशंकर जी मिश्र 'श्रीपति']

कहते असार नहीं पाया है जिन्होंने सार,
होगये निसार वेही जानते हैं जन्मसार।
जिसने दिया बिसार घर बार परिवार,
जाना जग सार वे न कहते इसे असार।
अपना प्रभुत्व छोड़, प्राणों का ममत्व तोड़,
जोड़ लिया नाता उन से है उन्हें ठर धार।
कामनायें छार हुई भावनायें भार जिन्हें,
वे ही यातनायें झेल होते भव सिंधु पार।

क्या भक्ति और ज्ञान एक है

[ले० श्री० बहिन जयदेवी जी]

बुद्धिमती:-बहिन ! दीर्घ काल से मेरे मन में यह शंका उठती चली आरही है, कि भक्ति क्या है ? और ज्ञान क्या है ? लोक में तो दो भिन्न २ मार्ग देखने में आते हैं। क्योंकि भक्ति मार्ग वाले ज्ञानियों से भिन्न अपने को कहते हैं। और ज्ञान मार्ग वाले भक्ति से पृथक् अपने को कहते हैं। दोनों सम्प्रदाय भी भिन्न २ ही हैं। भक्ति वाले ज्ञान को तुच्छ समझते हैं और ज्ञान मार्ग वाले भक्ति को तुच्छ कहते हैं। परन्तु वेद-वेत्ता और शास्त्रों से सुनती हूं कि ज्ञान और भक्ति एक ही हैं, वह एक ही परम प्रभु, अद्वैत निराकार, अच्युत, अविनाशी, सर्वेश्वर, निरवयव, भिन्न रूप होगया है, वही बाल, वही वृद्ध, वही युवा, वही राम, वही कृष्ण, वही गोपी, वही ब्रह्मा, वही विष्णु, वही शिव, वही रुद्र, इत्यादि सर्व रूप होगया। फिर देह धारियों के अन्दर यह भेद भाव कैसे और क्यों हुआ ? क्या भक्तों का प्रभु और है ? और ज्ञानियों का और ? कि अपना २ प्रभु पृथक् बना भिन्न २ बर्ताव करते हैं। कहावत है 'प्रेम से प्रगट होइ भगवाना' अर्थात् भगवान् तो प्रेम से प्रगट होते हैं। जहां परस्पर भेदभाव हो वहां भगवान् का वास कहां। गीता में भी स्वयं श्री मुख से भगवान् ने कहा है. कि जो मनुष्य सर्व प्राणीमात्र से राग द्वेष रहित शुद्ध प्रेम से बर्ताव करता है, वही मेरा परम भक्त है, मेरे जीवों से जो प्रेम करता है, वही मुझ से प्रेम करता है। क्या यह भगवान् का वचन असत्य है ? ज्ञान और भक्ति को भिन्न मानने वालों में तो हर एक प्राणी तथा सम्प्रदायों के अंदर राग, द्वेष, अहंकार इत्यादि देखने में आते हैं. जिनको प्रभु चरणों में प्रीति है, वे अवश्य ही भगवान् के कथित वचन का आदर करेंगे। तब फिर उनके लिये अहंकार तथा राग, द्वेष, ईर्षा असूयादि को स्थान कहां मिलेगा ? बहिन ! इस मेरी शंका का समाधान कर कृतार्थ कीजिये।

विज्ञानवती:- बहिन ! जो तू कहती है सब यथार्थ ही है, लोक में ऐसा ही देखने में आता है। परन्तु ज्ञानी हो चाहे भक्त हो उसको लोकों की ओर नहीं देखना चाहिये, उसको तो शास्त्र तथा ऋषियों के वचनानुसार कार्य करना चाहिये। आगम जैसे यह कहता है कि वह एक ही परमात्मा सर्व रूप होगया है। बस इसी पर निश्चय कर सर्व प्राणी मात्र में सम प्रेम रखना चाहिये, किसी से भी द्वेष न करना चाहिये और जो इस आगम वचन को न मान अपनी मन मानी करते हैं वे भक्त नहीं हैं वे तो वंचक भक्त हैं, उनके लिये ईश्वर बहुत दूर हैं। ज्ञानी और भक्त एक ही ईश्वर के मानने वाले हैं। परन्तु ईश्वर सर्व रूप भी है, और निरूप भी है, ईश्वर जैसे को तैसा है। जो जैसी भावना करता है, उसी रूप में उसको दर्शन देता

हैं। निरूप की भावना वाले को निरूप भगवान् के दर्शन होते हैं, और रूप की भावना वालेको स्वरूप प्रभु के दर्शन होते हैं और वंचक को वंचक रूप से भगवान् के दर्शन होते हैं। जो श्रीकृष्ण भगवान का अनन्य भक्त है, हर समय अपने प्रभु के प्रेम मे आकुलित है, उसको शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी भगवान् चतुर्भुज के दर्शन होते हैं और जो वंचक भक्त हैं, उनको वही भगवान् यमराज के रूपमें दिखाई देते हैं। एक ज्ञानी और भक्त कहीं चले जारहे थे। रास्ते में इस प्रकार वार्तालाप होना प्रारम्भ हुआ।

भक्तः ज्ञानी जी! तुम्हारे प्रभु तो सर्वत्र हैं! आप जरा अपने प्रभु के दर्शन तो करा दीजिये।

ज्ञानीः- ईश्वर सर्वत्र है, पूर्ण है, अरूप है, दर्शन तो रूप वाली वस्तु का होता है, उस प्रभु का लाल, पीला इत्यादि कोई रूप नहीं है। न सूक्ष्म है, न दीर्घ है, न परिणाम है, फिर उसका दर्शन कैसे कराऊं अर्थात् किसी स्थान पर प्रभु नहीं कहां दर्शन कराऊं, उससे तो कोई स्थान खाली ही नहीं है, वह तो परम प्रत्यक्ष है, अप्रत्यक्ष का दर्शन होता है स्वंय सिद्ध स्वयं प्रकाशरूप ब्रह्म का दर्शन तो हर समय ही होता है, अपना आत्मा होने से हर समय अपने पास है उस नित्य, शुद्ध, बुद्ध मुक्त ईश्वर का दर्शन कैसा,?

भक्तः- क्या तुमको भगवान् के प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थान मे दर्शन होते हैं?

ज्ञानीः- अवश्य होते हैं? हमरा भगवान् तो पूर्ण है, ठास है, सर्वत्र है ऐसा कोई समय कोई स्थान नहीं, कि जिस समय वा जिस स्थान मे भगवान् नहो! क्या तुम्हारे भगवान् के तुम को प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थान में दर्शन नहीं होते?

भक्तः- वाह वा! क्या उलटी गंगा बहाई, क्या हमारा भगवान् ऐसा है जो गली २ धक्के खाता फिरे, वह तो वृन्दावन विहारी हैं। गोपियों में रमण करने वाले हैं, जो बाहर से अत्यन्त शुद्ध होकर पवित्रता, से प्रेम से, हरि कीर्तन करता है, अश्रुधारा बहाता है, अत्यन्त व्याकुल होता है, तब कहीं भगवान् दर्शन दें और न भी दें। उनकी लीला ही निराली है, उनकी महिमा का कौन पार पा सकता है हमारे भगवान् ऐसे सर्वत्र विहारी नहीं हैं कि चाहे जैसा पवित्र तथा अपवित्र स्थान हो वहां ही खड़े रहो न और सर्व व्यक्तियों में समान हैं, कि चाहे जैसा कोई अपवित्र पवित्र हो, उसके पास बैठे रहें, हमारे कृष्ण भगवान् तो उन्हीं भक्तों को दर्शन देते हैं जो स्नानादिक करके तिलक छाप लगाते हैं। तुलसी रुद्राक्षादि की माला धारण करते हैं।

ज्ञानीः-भाई! भगवान् तो तुम्हारे ऐसे नहीं हैं, वे तो समदर्शी हैं, जो प्रेम से स्मरण करता है, उन्हीं को दर्शन देते हैं, भगवान् तो सर्वत्र हैं व्यापक हैं, श्रुति स्मृति दोनों ऐसा ही भगवान् को कहती हैं। यह तो सब तुम्हारी अपनी कल्पना है कि तिलक छापे लगाने अथवा अश्रु गिराने से ही परमात्मा के दर्शन होते हैं। तिलक छाप माला और स्नानादि क्रिया करना यह तो बाहर का शौच है, ईश्वर प्राप्ति में तो बाहर के शौच की अपेक्षा आन्तर शौच की अधिक आवश्यकता है। जब तक आन्तर शौच, अर्थात् छल, कपट राग, द्वेष, भेद भाव, और अहंकार इत्यादि मन में से बाहर निकाल कर न फेंक दिये जायेंगे, तब तक भगवान् का दर्शन नहीं हो सकता। क्योंकि लोक में भी यह प्रत्यक्ष है कि जैसे से मिलने जाय, वैसा ही वेष धारण करके जाना होता है। विद्वान् से विद्वान्

मिलता है और मूर्खसे मूर्ख तो भला सर्व शक्तिमान् सर्व अन्तर्यामी, भगवान् से कपट छलसे भरा हुआ कैसे मिल सक्ता है। यही कारण है कि अब तक तुम को भगवान् के दर्शन नहीं हुये। एक बाह्य पवित्रता से ही भगवान् नहीं मिलसक्ते। बाहर पवित्रता धारण करना तो हरएक को सुगम है। परन्तु आन्तर शौच करना अतिकठिन है। भगवान् तो हरएक को देखते हैं उनके लिये ऊंचा क्या, और नीचा क्या? रामायण और भागवत् से प्रसिद्ध है कि भगवान् नीचसे नीच ऊंचसे ऊंच सभी को प्रेम वश दर्शन देते हैं। द्रौपदी कैसी अपवित्र अवस्था में थी जबकि भगवान् ने दर्शन दे चीर बढ़ाया और भीलनी कैसी नीच जाति थी, कि जिस के हाथ के जूंठे फलों का भगवान् ने भोग लगाया। इससे यह सिद्ध हुआ कि भगवान् को सब आत्मा हैं और भगवान् सब में है। सब भगवान् में हैं, उनको नीच ऊंच कोई नहीं। जहां सब एक ही है वहां द्वैत कहां! परन्तु अशुद्ध हृदय वाला तो चाहे ज्ञानी हो। भक्त हो दोनों समान ही हैं। इन दोनों में से किसी एक को भी भगवान् के दर्शन नहीं हो सक्ते। चाहे जितने आडम्बर दिखाया करें। भगवान् सब का एक ही है। दो नहीं है यह सब तुम्हारी कल्पना है।

विज्ञानवती:-बहिन? अब मैं तुमको स्पष्ट करके बताती हूं कि ज्ञानी और भक्त में कुछ भेद नहीं है। और ईश्वर के अनेकों नाम हैं। चाहे जिस नाम से पुकारो सब नाम उसी के हैं। जैसे, भक्ति कहो, ब्रह्म कहो, कृष्ण कहो, राम कहो, शंकर कहो विष्णु कहो आदि २ सब एक ही है, नाम मात्र का भेद है, सो नाम वास्तव में कुछ नहीं हैं सब तुच्छ स्वप्न हैं। यथा जल कहो, वारि कहो, समुद्र कहो, पानी कहो, गंगा कहो, यमुना कहो, इत्यादि सर्वत्र पानी ही है, अथवा, जैसे जाग्रत कहो, स्वप्न कहो, सुषुप्ति कहो, संसार कहो, माया कहो, प्रधान कहो, सब एक चेतन ही की सत्ता है। नाम रूप उपाधिका भेद है। नाम रूप उपाधि को दूर करदो, तो एक ब्रह्म सत्चित आनन्द परि पूर्ण रहता है। वही तू है। वही मैं हूं। ज्ञानी और भक्त की दृष्टि एक ही है, गोपियों को हर समय, हर स्थानमें हर अवस्था में कृष्ण दीखते थे, क्योंकि वे श्री कृष्ण को जगत का नाथ न जान कर गोपीनाथ जान, कृष्ण मय होने से मुक्ति को प्राप्त हुई हैं, ऐसे प्रेम का पात्र बनने के लिये तन मन रहित बन जाना चाहिये, उत्साही रहना चाहिये। दृश्य मात्रका लोप करना चाहिये। दृश्यका दृष्टा में विलय करना चाहिये। चित्त तथा चैतन्य दृश्य तथा दृष्टा ये नाम मात्र को उपाधियां टल जानी चाहिये। भेद मिटना चाहिये। अभेदमय हो जाना चाहियें। बलवती लोभ वृत्तिका नाश होना चाहिये। यह दिव्य प्रेम रसायन इस का जो भागी है वह इस में सर्व काल निवास करता है, और उसको वृत्तियां विरम जाती हैं। यही भक्त परम ज्ञानी है। जिसने भाव वृत्ति से भावत्व शून्य वृत्ति से शून्यत्व और पर ब्रह्म वृत्ति से पूर्णत्व जाना है। ज्ञान भक्ति रूप है, और भक्ति ज्ञान रूप है, दोनों साथ रहते हैं कोई कहे कि अकेले ज्ञान से मोक्ष है सो नहीं, भक्ति बिना ज्ञान मिथ्या है और ज्ञान बिना भक्ति मिथ्या है, ज्ञानी और भक्त दोनों ही परमपद के अधिकारी हैं। दोनों ब्रह्म रूप हैं, ब्रह्म में ही विलास कर रहे हैं। जगत् में रह कर जिसका द्वैत भाव अदृश्य हुआ है वही ज्ञानी, वही प्रेमी निर्हेतुक भक्ति में ही लीन रहता है। क्योंकि हरि प्रेम ज्ञान रूप ही हैं। जैसे

संसारी अविवेकी जीव की अटल प्रीति विषयों में होती है। वैसी ही अटल प्रीति ज्ञानी तथा भक्त की प्रभु के चरणों में होती है। सच्ची भक्ति जिसके हृदय में अंकुरित हुई है। उसीका हृदयराग द्वेष रहित होकर परमात्मा के अनन्य प्रेम में रंगता है वह ही भक्ति और ज्ञान का अधिकारी होता है। जिस काल में भक्त के हृदय में अनन्य भक्ति उत्पन्न हो जाती है उस समय सिवाय अपने प्रभुके और कुछ नहीं दिखाई देता। इसी प्रकार ज्ञानी को जब ब्रह्म का अपरोक्ष होजाता है यानी प्रत्यक्ष रूप से ब्रह्म को जान लेता है तब उसको अपने आत्म से अन्य और कुछ दृष्टि में आता ही नहीं। जगत्, जगत् में रहो, वह तो अन्तरात्मा में हर समय मग्न रहता है। अतः ज्ञान से भी ब्रह्म की प्राप्ति है, और प्रेम भक्ति से भी ब्रह्म की प्राप्ति है। अधिकारी भेद से ही भक्ति तथा ज्ञान भिन्न २ प्रतीत होते हैं। जिनकी दृष्टि में जगत् का लय होगया है, राग,द्वेष, मैं, मेरा अर्थात् सर्व जगत् सर्व प्राणी मात्र जड़ और चेतन में से भेद भाव दूर होगया है। वेही ज्ञानी तथा भक्त कहलाने का अधिकारी है। भक्त को जैसे अपने प्रभु से पृथक् कोई दूसरी वस्तु दिखाई नहीं पड़ती, इसी प्रकार ज्ञानी को अपनी आत्मा से पृथक् कोई दूसरी वस्तु दिखाई नहीं पड़ती। ज्ञान ही भक्ति है और भक्ति ही ज्ञान है। ज्ञान से उत्पन्न हुई भक्तिसर्व श्रेष्ठ है और भक्ति से उपजा हुवा ज्ञान अचल अटल और अवाध्य रहता है। इसी ज्ञाना भक्ति में रहता हुआ जीव सर्व काल परमात्मा का सामीप्य भोगता हुआ सायुज्य को पाता है। यह अति अद्भुत है, सत्य है, इसी दशा को प्राप्त जीव ईश्वर की कृपा से मुक्त हो जाता है। अजामिल जैसा अधम जीव इस दशा को क्षण मात्र में प्राप्त कर सका है। परन्तु यह दशा प्राप्त होना अनन्यता का प्रताप है। जिस प्रेमा भक्ति से अजामिल ने ईश्वर का भजन किया है वह प्रेम शुद्ध और सात्विक है। ज्ञानी की वृत्ति तीव्रतम उच्च अभिलाषी है। भक्त का हृदय वृत्ति भावना उच्च तथा संस्कारी है। दोनों के आत्मा में परमात्मा का शुद्ध प्रेम तथा शुद्ध ज्ञान समान ही गंभीर और गाढ़ है! भक्त तथा ज्ञानी दोनों ही भूमा ब्रह्म के दर्शन के अधिकारी हैं। जो सुख है वह भूमा में ही है। अल्प में अर्थात् संसार में सुख नहीं है। जो अल्प में प्रेम करते हैं वे अल्प ही रहते हैं। जो पूर्ण से प्रेम करते हैं वे पूर्ण होते है। ऐसे प्रेम का पात्र बनना चाहिये। विषय वासनाओं से मन को शून्य बनाना ही ईश्वर प्रेम तथा भक्ति है। जब तक परमात्मा में अनन्य भक्ति न होगी तब तक कोई भी पथारूढ़ नहीं हो सकता।

एक भक्त की भावना

प्यारे परम प्रवीन जन्म जन्मान्तर में भी,
रीझ रहे यह बनी रहो तुम अन्तर में भी।
इष्ट देव हो तुम्ही हृदय मन्दिर के भीतर,
ध्यान धरूं मैं सदा तुम्हारा हर्षित होकर।
जो मैं होऊं वृक्ष लता बन कर तुम मिलना,
पाकर प्रेम प्रमोद गोद में खुल कर खिलना।
जो मैं होऊं फूल कुंज में सरस सुगंधित।
तो बन कर मकरन्द सदा रहना अन्तस्थित॥
जो मैं होऊं कठिन पहाड़ी पत्थर मर कर।
तो तुम होना विमल सुशीतल झरना सुन्दर॥
जो मैं होऊं स्वच्छ सरोवर मीठे जल का।
तो तुम रखना रूप प्रफुल्लित अमल कमल का॥

जो मैं होऊं अति गंभीर सागर तो प्रियवर।
मुझ में रहना मंजु मनोहर मोती बनकर॥
जो मैं होऊ कर्म भोग से काला विष धर।
तो प्राणाधिक महा मूल्य मणि होना सरसर॥
नील आकाश अनन्त बीच जो मैं मिल जाऊं।
निष्कलंक तव इन्दु रूप मैं तुम को पाऊं॥
किसी रूप में कहीं जाऊं मत होना न्यारे।
हर हालत तुम को चाहती हूं मैं प्यारे॥

विज्ञानवतोः-जब इस पूकार की सच्ची प्रार्थना करते२ भक्त का हृदय ईश्वर प्रेम से आच्छादित हो जाता है भक्ति की दशा में जो प्रभु द्वैत रूप से भासता था, वही प्रभु भक्ति निर्मल तथा दृढ़ होने पर अपना आत्मा रूप से प्रकाशित हो जाता है! अतः भक्ति ज्ञान एक ही हैं। दो मानना अज्ञान का फल है।

गीता योगशास्त्र है

[ले० श्रीभगवान्]

आज तक संसार के साहित्य में जितने भी ग्रन्थ रचे गये हैं। उनमें एक गीता ही ऐसा ग्रन्थ है, जो विश्वमान्य हो रहा है। यह सब के लिये समान ही सरल, सुगम, सुबोध, और उपयोगी है। इसके ये सामान्य गुण ही इस बात को बता रहे हैं, कि यह मानव समाज का सुभग पथ प्रदर्शक है।

इसी आशय को ध्यान में रख कर इस ग्रन्थके अनेकों भाष्य, अनुवाद, और टीकाएँ हो चुकी हैं; तथा होती जाती हैं। परन्तु इन अनुवादकों, एवं टीकाकारों के सम्बन्ध में कहना ही क्या है? जब कि भाष्यकारों का ही ऐसा कथन है, कि 'यह ग्रन्थ अनन्त सागर है। इसका वस्तुतः थाह पालेना बहुत ही कठिन है। इस ग्रन्थ पर जितने भाष्य आज तक हो चुके हैं वे सभी प्रायः मत प्रवर्तकों द्वारा ही हुए हैं। जिससे कहा जासकता है, कि उन्होंने जो कुछ भी इस ग्रन्थ का भाव दर्शाया है वह स्वमति प्रतिपादनार्थ अपने ही मन के अनुसार है। जिसके कारण उसमें पक्षपात का आजाना सतत सम्भवनीय घटना है। और ऐसा ही हुआ भी है।

इन साम्प्रदायिक भाष्यकारों के भाष्यों को प्रधानतः दो भागों में विभक्त किया जासकता है। यद्यपि ये दोनों भाग एक ही प्रकार के हैं।

(१) संसार से संन्यास लेकर सतत ज्ञान में ही लीन रहना।

(२) संसार से अलग होकर सतत भक्ति में ही लीन रहना।

ये दोनों संन्यास प्रधान ही हैं। अतः इन को एक ही प्रकार का कहना चाहिये। इन साम्प्रदायिक भाष्यकारों के अतिरिक्त एक भाष्य लोकमान्य तिलक ने गीता-रहस्य' के नाम से किया है। जो आचरण की दृष्टि से जीवन-पर्यन्त कर्म करते रहने का समर्थन करता है। यह भाष्य कभी भी संसार के त्याग को समीचीन नहीं बताता है।

इस प्रकार अभी तक गीता-शास्त्र के जितने भी भाष्य हो चुके हैं, वे प्रायः आचरण की दृष्टि से द्विविध ही हैं।

(१) कर्म त्यागात्मक; और (२) कर्मसंग्रहात्मक;।

इसी प्रकार सिद्धान्त की दृष्टि से भी प्रायः

ये द्विविधात्मक ही कहे जासकते हैं।

(१) अद्वैत वादात्मक; और (२) द्वैत वादात्मक;।

इस द्वैत-वाद के अन्तर्गत ही विशिष्टा द्वैत, द्वत, एवं त्रैत, आदि वादों को भी समझ लेना चाहिये।

इस प्रकार पूर्व भाष्यकारों के सिद्धान्त और आचरण को द्विविध विभागों में विभक्त करते हुए अब यहां पर देखना चाहिये कि इनमें यथार्थता कितनी है? इस लेखका प्रधान विषय आचरण है। इसलिये पहिले आचरण दृष्टया विचार न करते हुए सिद्धान्त दृष्टया ही विचार करना विशेष उपयुक्त है। गीता शास्त्र जहां पर तत्व विवेचन का निर्णय करता है वहां पर 'अहम्' को सर्व श्रेष्ठ कहता है। आधिदैवत विवेचन करते हुए सातवें अध्याय में इसका द्विविध विभाग, पर, अपर विचार से करता है जब किसी पदार्थ के द्विविध भाग, पर अपर विचार से किये जाते हैं। तब यह निश्चय है, कि पर रूप ही उसका यथार्थ रूप है और अपर रूप उसका प्रभाव, छाया, या प्रतिबिम्ब है।

इस पर रूप को ही गीता-शास्त्र जीव कहता है। और अपररूप को त्रिगुणात्मिका प्रकृति कहता है। पर का ही प्रभाव अपर है। अतः ये दोनों तत्वतः अभिन्न हैं। जिससे जीव और माया अभिन्न हैं। इसी को आध्यात्मिक विवेचन के आधार पर इस प्रकार कहा गया, कि यह शरीर ही क्षेत्र है और इसका ज्ञाता क्षेत्रज्ञ है। यह शरीर त्रिगुणात्मिका प्रकृति का खेल है और क्षेत्रज्ञ इसका प्रकाशक है; चेतन हैं। अतः वह पर रूप है। ज्ञाता ज्ञेय, एवं प्रकाशक प्रकाश्य, अभिन्न होने से तत्वतः एक हैं। इस विचार से यह भी कहा गया है, कि इन दोनों का ही ज्ञान 'अहम्' का ज्ञान है। यह 'अहम्' ही 'आत्मा, परमात्मा, जीव, क्षेत्रज्ञ, ईश्वर, परमेश्वर, भगवान्, आदि गीता शास्त्र में कहा गया है और जिस अपर रूप को त्रिगुणात्मिका प्रकृति कहा गया है उसीको चराचर पुरुष भी कहा गया है। तथा इस 'अहम्' को ही परम अक्षर ब्रह्म भी कहा गया है और प्रकृति को 'अक्षरब्रह्म, ब्रह्म, या महद् ब्रह्म कहा गया है। इस प्रकार से गीता शास्त्र ने एकत्व का ही बोध कराते हुए तत्वतः एक ही तत्व को सर्वोपरि माना है और यही यथार्थ भी है। कारण कि एक से अधिक तत्व विश्व व्यापक, सर्वज्ञ, सर्व शक्ति सम्पन्न, स्वतन्त्र, एवं विश्वकर्मन् नहीं हो सकते हैं। इस सम्बन्ध में यदि यहां पर अधिक विचार किया जायगा, तो लेख बहुत विस्तार को प्राप्त हो जायगा और प्रधान विषय के लिये समय और स्थान की कमी हो जायगी। इसलिये इस विषय को परिसमाप्ति यहां पर ही कर दी जाती है और प्रस्तुत (प्रधान) विषय की ओर ही पुरः सरण किया जाता है। इस विषय का निर्णय हो जाने पर कि गीता शास्त्र आत्मतत्व को एक ही सिद्ध करता है, यह भी देख लेना चाहिये, कि वह किस प्रकार से अनेक होजाता है? गीता शास्त्र उस क्रिया का भी नाम, योग ही रखता है जिस क्रिया से विश्व प्रसारण करता है और इस योग के पर अपर विभाग के अनुसार दो भेद करता है।

(१) योग माया अथवा प्राकृतिक योग; वह योग है, जिसके द्वारा अव्यक्त से व्यक्त हो जाता है। यह अपर योग है।

(२) ईश्वरीय योग; वह योग है, जिसके द्वारा विश्वकर्मन् होते हुए भी अकर्मन् रहा करता है। यह पर योग है।

ऊपर में निवास करने वाले प्राणी पररूपता को कैसे प्राप्त कर सकते हैं, इस पर विचार करते हुए जो कुछ भी निर्णय गीता शास्त्र ने किया है उसका भी नाम यह योग ही रखता है। जिसे कहीं पर योग, कहीं पर संन्यास, और कहीं पर भक्ति नाम देता है। पर तत्वतः इनको एक ही मानता है। इस योग, संन्यास, अथवा भक्ति का भी अपर रूप से यह दो २ विभाग कर देता है।

(१) कर्म योग, और (२) ज्ञान योग;

(१) कर्म संन्यास, और (२) संन्यास;

अथवा (१) सामान्य भक्ति, और पराभक्ति; और इन्हीं द्विविध योग, संन्यास, अथवा भक्तिका यह विस्तृत वर्णन करता है। अतः आचरण दृष्टि से गीता शास्त्र योग-शास्त्र है। इस योगको ही गीताशास्त्र में धर्म भी कहा गया है। इसलिये यह योगशास्त्र धर्म (सहज, अध्यात्म, ब्रह्म, विषयक) शास्त्र भी है। इस योगशास्त्र में योग के द्विविध विभागों को ही निष्ठा भी कहा गया है और यथार्थतः इन से भिन्न कोई तीसरी निष्ठा हो भी नहीं सकती है। इस विषय पर विचार करते हुए गीता ने पूर्ण मानव जीवनपर दृष्टि प्रसारण किया है। जो योग वर्णन के लिये सर्वथैव आवश्यक है। अतः उसका भी यहां पर सामान्यतः दिग्दर्शन करा देना चाहिये। गीताशास्त्र योगशास्त्र होने से मानव जीवन पर ही विशेष रूप से ध्यान देता योग ही धर्म है और धर्म की परिभाषा करते हुए गीताशास्त्र 'कुरु' शब्द का प्रयोग करता है। अर्थात् 'करो' यही धर्म है। इस 'कुरु' शब्द को सुनते ही हृदय में यह भावना उठ जाती है, कि क्या करो? जिसका उत्तर देते हुए गीताशास्त्र ने अन्तिम निर्णय इस प्रकार सुनाया है, कि निरतिशय सुख अथवा भगवद्रूपता की प्राप्ति करो। इस पर भी यह प्रश्न हो सकता है, कि वह कैसे प्राप्त किया जाय? जिसका उत्तर गीता-शास्त्र यह देता है, कि अपने सहज के अनुकूल ही वर्तन करते हुए। इस संक्षिप्त उत्तर का विस्तार करने के लिये वह मानव जीवन पर ध्यान देते हुऐ इस प्रकार का कथन करता है कि जब प्राणी तिर्यक् योनियों को प्राकृतिक क्रम विकास के आधार पर पार करते हुए मानव योनि में पहुंचता है तब सर्व प्रथम असुरयोनिमें निवास करता है जिसमें अनेक जन्म तक रह कर देवयोनि को प्राप्त करता है। जिस देवयोनि में वैदिक कर्मकाण्ड का अनुयायी रहा करता है। इसप्रकार ये द्विविधमानव-योनियां, वासनात्मक जीवन की मानवयोनियां हैं। जिन की सन्धियोनि को अपयोनि अथवा पापयोनि के नामसे पुकारा जाता है। जिस सहज-क्रमविकास के आधार पर प्राणीतिर्यक् योनियों को पार करते हुए वासनात्मक जीवन में आकर वैदिक धर्म का अनुयायी होजाता है उसी सहज क्रम विकास के आधार पर वह निष्काम होकर साधनात्मक जीवन में निवास करने लगता है। इस साधनात्मक जीवन के दो प्रधान विभाग हैं। (१) कर्मयोग, और (२) ज्ञानयोग। इस कर्मयोग का विवेचन करते हुए गीता शास्त्र ने इस के भी दो ही प्रधान विभाग स्थापित किये हैं।

(१) मद्योग-फलाशा त्यागमात्र है। अर्थात् ईश्वर के प्रति कर्म फलों का अर्पण करना है।

(२) मत्कर्म-कर्म संन्यास है। अर्थात् ईश्वर के प्रति कर्मों को अर्पण करके करना है।

इस कर्म योगमें जो सामान्य ईश भक्ति है उसके भी दो विभाग गीताशास्त्र ने करदिये हैं।

(१) व्यक्तोपासना-सहज के अनुकूल एक व्यक्ति को मानकर उसको विश्वमें और उसमें विश्वको देखने

की दृढ़ भावना करते हुए कर्म योग का अनुसरण करना ।

(२) अव्यक्तोपासना-ईश्वर को सर्वत्र समान भाव से देखना तथा उसको सर्वज्ञ एवं सर्व समझना और अपने को इसी भाव से युक्त करके कर्मयोग का अभ्यास करना ।

इस कर्मयोग की सिद्धि के अनन्तर ध्यान-योग की प्राप्ति होती है। जिस के द्वारा मनुष्य ज्ञान विज्ञान एवं पराभक्ति को प्राप्त होता हुआ भगवत् रूप हो जाता है। इस प्रकार पूर्ण मानव जीवन पर ध्यान देते हुए इस गीता ग्रन्थ में योग का वर्णन किया गया है, इसीलिये इस को धर्मशास्त्र अथवा योगशास्त्र कहा जाता है।

दोष न देखना

[ले० श्री हीरानन्द ब्रह्मचारी आश्रम]

अगर तुझे दुनियां में बुराई दिखाई देती है, तो पहिले अपने आपे को टटोल, और देख। निश्चय करके तेरे कर्ममें बुराई सम्मिलित होगी। कर्ममें बुराई सम्मिलित होने से विचार भी अपूर्ण होंगे, और तेरे कर्म भी असत्य और अशब्द होंगे। इस लिये पहिले विचार पूर्ण कर। जब विचार पूर्ण हो जायंगे तो कर्म भी सत्य शुद्ध और पूर्ण होंगे। दूसरों पर क्रोध करना, और फिर अपने किये पर पछताना और क्षमा करना क्यों किया जाता है? अज्ञान से। क्या क्षमा करने का अर्थ यह नहीं है कि हम अपने क्रोध को वापिस लेते हैं? और प्रतिहिंसा को छोड़ते हैं और यदि क्रोध प्रतिहिंसा अच्छे हैं और आवश्यक हैं तो फिर पछताना और छोड़ना क्यों होना चाहिए? इत्यादि। यह बातें सुन्दर, मीठी और शान्तिदायक हैं, कि हम किसी के साथ प्रतिहिंसा न करें, न किसी से नाराज़ हों, न किसी से बदला लें, सदैव उस शुद्ध, पवित्र और प्रेममय भावना में रहें, जिस को हम उस समय अनुभव कर सकें, जब कि हम किसी को क्षमा करते हैं दूसरे के प्रति हमारा मिथ्या क्रोध शान्त हो जाता है यदि दूसरे ने मेरे साथ अनुचित व्यवहार किया है, क्या मेरा उस के प्रति घृणा करना उचित नहीं है? नहीं २ घृणा नहीं करनी चाहिए क्योंकि उसको उस व्यवहार का ज्ञान ही नहीं है, कि मैंने अच्छा किया या बुरा। यदि ऐसा है तो 'प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्' इस न्याय के अनुसार दुव्यवहार करके क्षमा मांगना ऐसा नहीं चाहिए और क्या एक भूल से दूसरी भूल का सुधार हुआ है? साथ ही यह भी विचारना चाहिये, कि उसने अपनी भूल से, अपने को अधिक हानि पहुंचाई है या मुझ को और मुझे उसकी भूलकी अपेक्षा अपने कर्म से तो अधिक हानि नहीं हुई है? जब यह बात है, तो मुझे क्यों नाराज़ होना चाहिए, मैं क्यों प्रतिहिंसा करूं, क्यों बदला लूं, और क्यों कठोर अपवित्र और अशुद्ध विचारों में पड़ूं? क्या यह इसलिये तो नहीं होता, कि मेरे अहंकार को धक्का लगता है, और मेरे स्वार्थों में रुकावट आती है? क्या इसलिये तो नहीं होता, कि मेरे अज्ञान युक्त पाशविक विचार जाग उठते हैं, और मैं उनको अपने वश में करने का प्रयत्न नहीं करता? और

दूसरे उनको दबाने का प्रयत्न करते हैं। यह जान कर दूसरे के व्यवहार से मुझको अपने मिथ्या अहंकार, अशुद्ध भावनाओं, और संयम की कमी से दुःख होता है। तो क्या यह उचित न होगा, कि मैं अपने मिथ्या अहंकार को दूर करके, और मन को संयम करके अपने कष्ट को दूर करूं? देखो जिन मनुष्यों को कीर्ति प्यारी है, वह अपने दोष को राई के बराबर होने पर पहाड़ के वृक्ष के समान समझते हैं, वे ही कीर्ति, यश, शुभ, और पवित्रकर्म, श्रेष्ठगुणों से सुसज्जित होते हैं। वे ही सर्वमान्य और समस्त कार्य्य कर्त्ताओं में अग्रसर होते हैं। यदि आपने रामायण का अवलोकन किया होगा, तो स्वयम् समझ गये होंगे कि महाराज रामचन्द्र जी ने अपनी माता कैकेई का दोष होने पर भी एक न देखा, और सदैव पूज्य भाव से उनका आदर किया। सब मनुष्य बराबर हैं। परन्तु फिर भी अपनी बुद्धि के अहंकार से एक दूसरे में दोष देखने लग जाते हैं। उस परमात्मा की दृष्टि में सब जीव समान हैं। फिर मनुष्य को दूसरे को दोषी बताने का क्या हक़ है? जैसे किस मनुष्य का चोरी करने का स्वभाव है, और अन्य सब गुण भी हैं। तो क्या यह दोष नहीं है? नहीं २ दोष तो है और उसने चोरी भी करना बुरा जाना है, परन्तु उसके गम्भीर भावको नहीं जाना है। यदि वह जान लेता, तो फिर कभी चोरी नहीं करता। जैसे सब मनुष्य जानते हैं, कि सर्प के छूने से वह काट लेता है, अग्नि में हाथ देने से वह जला देता है, उनको कोई नहीं छूता, ऐसे ही जो मनुष्य अपराध करता है, उसको बुरा न कह कर उसको समझाओ, और अपने स्वभाव और अन्तःकरण को शान्त व पवित्र बनाओ। जब तुम अपनी कमजोरियों की ओर पूर्ण रीति से ध्यान देने लगोगे, तो दूसरों के दोष देखने का स्वभाव दूर हो जायगा।

तेरे भावें कछु करो, भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठ कर अपनो भवन बुहार॥

इस बात को न देख कर अपने आपे को सुधार। जब अपना आपा ठीक हो जायगा तो कोई बुराई और भलाई दृष्टि गोचर नहीं होगी। और समस्त विश्व आत्मारूप भासने लगेगा।

परस्वभाव कर्माणि, न प्रशंसन्नगर्हयेत्।
विश्वमेकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण वा॥

जो दूसरे के स्वभाविक कर्मों की न तो प्रशंसा करता है, और न निन्दा, प्रकृति और आत्मा से समस्त विश्व को एक देखता है, वह समस्त जन समुदाय में पूज्य होता है। वह कभी किसी में बुराई नहीं देखता। यथा:-

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न पाया कोय।
ध्यान से देखा अपना, मुझ से बुरा न कोय॥

महाराज युधिष्ठिर सदा गुणग्राही थे, दूसरे के दोष को भी गुण की दृष्टि से देखते थे। इसलिये वह समस्त गुणों से युक्त और पूज्य थे। दुर्योधन सदा दूसरे के गुण और बड़ाई को सुनकर जलने वाला और दोषग्राही था।

परस्वभाव कर्माणि, यः प्रशंसति निन्दति।
स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्याभि निवेशतः॥

दूसरों के स्वभाव और कर्मों की जो प्रशंसा या निन्दा करता है वह असत्य में आसक्त होने से जल्दी ही स्वार्थ से गिर जाता है। इसलिये प्रिय पाठकगण! कभी भूल कर भी दूसरे के दोषकी ओर दृष्टि प्रसारित न करना। क्योंकि दोष तो दृष्टि का विकार है। इसका अभ्यास करते २ समस्त विश्व

आत्मा रूप भासने लगता है फिर कहिये आत्मा और परमात्मा में क्या भेद है। सब से अच्छा उस परमात्मा को प्राप्त करने का यही उपाय है

राम नाम क्या है ?

[ले० श्री शिवदयालशरण जी]

देखिए श्री गोस्वामीजी कितने अच्छे भावों में कह रहे हैं:-

महिमा जासु जान गणराऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥
जानि आदिकवि नाम प्रतापू। भयऊ शुद्धकरि उलटा जापू॥
सहस नाम सम सुनि शिव बानी। जपे जेई शिव संग भवानी।
नाम प्रभाउ जान शिव नीके। काल कूट फल दिन्ह अमीके॥
जपहि नाम जन आरत भारी। मिटहीं कुसंकट होय सुखारी॥
कहौं कहा लगि नाम बड़ाई। राम न सके राम गुण गाई॥

अब तो समझ गये होंगे कि, राम नाम कितना पतित पावन है, कितना प्रिय है, कितना आनन्द दायक है, कितना श्रेष्ठ है कि जिसके सुनने मात्र से रोमाञ्च खड़े होते हैं। राम नाम लेने से कितना आनन्द आ सकता है।

मनुष्य शरीर का पहिला धर्म यह है कि इस राम नाम का सदैव जाप करे, क्योंकि कलियुग में राम नाम के सिवाय ऐसा सुगम उपाय नहीं है कि जिससे मनुष्य चौरासी से मुक्त हो, सके केवल इस रामनाम से ही प्राणी वैकुण्ठ प्राप्त कर सकता है, और सद्गति भी हो सकती है। श्री गोस्वामीजी ने भी कहा है।

देह धरे का यह फल भाई। भजिए राम सब काम विहाई॥
पुत्रवती युवती जग सोई। रघुवर भक्त जासु सुत होई॥
न तरु बाँझि भलि बादि बियानी, राम विमुख सुत तें हित हानी।
राम एक तापस तिय तारि, नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥

राम नाम की महिमा अगाध है, राम नाम की महिमा शेषजी भी नहीं वर्ण कर सकते। मनुष्य को इस अमूल्य समय को बेकार न खोना चाहिए, क्योंकि बारबार यह समय नहीं मिलता है। ऐसा जानकर सदा सहायक श्री रामचन्द्रजी की सदैव "भक्ति" करनी चाहिए इसमें ही परम कल्याण है।

राम हीं भजहीं तात शिव धाता। नर पामर कर केतिक बाता,
अस जिय जानि भजो रघुनन्दा। जेहू तात जगजीव अनन्दा॥

राम भज रे

[ले० श्री हनुमानप्रसाद जी शर्मा 'सैनिक']

पाई नर देह तऊ कियो ना उपाय नेक।
जाते दुख होत विविध ताको तू तज रे॥
भाई, मित्र, दारा, सुत स्वारथ सनेही हैं।
अंत में न आवैं काम तिनसों तू भजरे॥
सैनिक सुकवि सब कर्म हैं अकर्म कीन्हे।
पापन सें भरी देह नेकहूं तो लज रे।
जौलौं महा काल के हवाले ना भयो है तौलौं॥
राम राम राम राम राम राम भज रे॥

वियोगी

[ले० श्री मदनगोपाल जी 'सिंहल']

यमुना की श्याम तरङ्गो! इठलाती हुई कहां जा रही हो ? क्या मुझ वियोगी के भी दो शब्द सुनोगी

देखो ! मैं कितनी देर से बैठा बैठा अपने नेत्रों के नीर से तुम्हारे नीर को अधिकाअधिक कर रहा हूं, इन अश्रु-मणियों की माला तुम्हारे अर्पण कर रहा हूं किन्तु तुमने मेरी ओर ध्यान भी न दिया। क्या तुम भी मेरे हृदयेश की भांति निष्ठुर हो ? देखो ! जब तुम वृन्दावन से होकर आगे बढ़ो तो मेरे प्रियतम से मेरा सन्देश कह देना ..... किन्तु यह क्या तुम तो आगे बढ़ी जा रही हो। मेरे प्यारे की प्यारी तरङ्गो ! क्या क्षण भर के लिये भी तुम मेरी बातें नहीं सुन सकती ?.....क्या सचमुच न सुनोगी ? अच्छा जाओ दुखियों की कौन सुनता है।

अरी श्यामा ! तू यह क्या कर रही है ! आज इतनी प्रसन्नता से इधर उधर क्यों फुदक रही है। क्या बढ़ती बढ़ती आज तू मेरे प्रियतम के देश में भी जावेगी। देख ! यदि जावे तो वहां एक तुझ जैसे ही रङ्ग का मेरा चित्तचोर रहता है। वह तुझे यमुना के किनारे मिलेगा, कुञ्ज गलियों में मिलेगा, वंशीवट के निकट मिलेगा, कदम्ब के नीचे मिलेगा, कहां कहां बताऊं वह वृन्दावन की गली गली में मिलेगा। हां ! तो देख यदि तू उससे मिले तो मेरा एक सन्देश..... बढ़ती कहां है। एक क्षण के लिये, केवल एक क्षण के लिये और ठहर जा मेरा सन्देश सुनती जा फिर चली जाना। क्या नहीं ठहरती ? न ठहर निष्ठुर ! तुझे भी अपने रङ्ग का गर्व होगया प्रतीत होता है। जा, बढ़ जा निष्ठुर ! वियोगियों की तू ही क्या कोई भी नहीं सुनता।

क्या बूंदें ? अहा ! नभमें श्याम घन उमड़े आ रहे हैं और मुझे उसका पता भी नहीं ! भय्या बादलो ! क्या मेरी भी एक बात सुनोगे ? देखो ! क्या तुमने मेरे प्रियतम को भी देखा है ? देखा तो अवश्य है किन्तु सम्भव है भूल गये हो। है याद, जब एक बार तुमने बर्ष बर्ष कर वृन्दावन को बहा देना चाहा था तो उन्होंने ही तुम्हारा मान मर्दन कियाथा। यदि भूल गये हो तो सुनो उनका नाम भी तुम्हारे नाम के समान घनश्याम ही है। हां ! तो यदि वह मिले तो उनसे.....चलने क्यों लगे ? केवल एक क्षण और ठहरो। क्या नहीं ठहरते, क्या तुझेभी उनका नाम पाकर गर्व होगया है ? हे प्रभा ! क्या श्याम रङ्ग में ही निष्ठुरता छिपी हुई है ?

हैं ! यह कैसी शुभ्रज्योतस्ना ! क्या यह मेरे प्राणाधार का हास्य है ! नहीं नहीं मैं भूला यह तो चन्द्र देव हैं। श्याम घनों के हटने पर अपना प्रकाश फैलाते हुवे वियोगियों को अपनी ज्वालामयी किरणों से जलाने के लिये प्रकट हुवे हैं। निशिनाथ ! क्या हँस रहे हो। मेरी दशा देख कर तुझे हंसी आती है ? परन्तु औरों की अवस्था देख कर हंसते हुवे तुझे लज्जा नहीं आती। आह ! प्राणो ! अपने ऊपर औरों का हसते देख कर निकल क्यों नहीं जाते ?

यमुना की तरङ्गो ! यदि मेरा सन्देश मेरे प्रियतम के पास नहीं ले जा सकती तो मुझे ही ले चलो। सशरीर मुझे वृन्दावन में अपने किनारे डाल देना। पवन देव ! तुझी जरा कृपा करो, जरा जोर से चल कर मुझे उड़ावो और मुझे मेरे प्राणाधार के चरणोंके पास डालदो। भूधर के ऊंचे ऊंचे शिखरो ! गिरो, मेरे ऊपर गिरो, मेरे प्राण को मेरे शरीर से अलग करदो, जिससे मैं अति शीघ्र ही अपने प्रियतम के पास पहुंच जाऊं।

भगवत् स्मरण।

[ले० श्री ब्रह्म जी शास्त्री]

शास्त्रों में "स्मरणं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म-निवेदनम्" आदि पदों से भगवान् की नवधा भक्ति का वर्णन है। वहां भगवत्स्मरण को ही भक्ति का मुख्य और प्रथम अंग माना है। क्योंकि प्रायः सांसारिक झगड़ों से शान्त और अशान्त हुआ मन, एक मात्र परमात्मा के चरणों में पहुंच कर ही शान्ति लाभ कर सक्ता है, क्योंकि भगवच्चरण शरण ही इस असार संसार में सुख और शान्ति का परम साधन है, एक भक्त ने लिखा है "यस्य स्मरण मात्रेण मुच्यते सर्वबन्धनात" अर्थात [उस परम दयालु परम पिता परमात्मा के स्मरणमात्र से ही प्राणी इस दुःखमय भवसागर की मजबूत जंजीरों के अशिथिल बन्धन से शीघ्र ही छूट जाता है।

जिस प्रकार प्रायः प्रत्येक शुभकार्य विघ्नों से घिरे रहते हैं, उसी प्रकार भगवद् भजन में भी धन, यौवन, पुत्र, कलत्र, आदि २ नाना बाधायें उपस्थित होती हैं। इस बात को विशेष ध्यान में रखते हुए, एक भक्त कविने जनता को सचेत करने के लिए, कितना सुन्दर पद्य लिखा है।

धन यौवन उड़ जायेंगे जैसे उड़त कपूर।
मन! मूरख गोविन्द भज क्यों चाटत जगधूर॥

अर्थात् रे मूर्ख मन! यह धन और यौवन कपूर की तरह उड़ जायेंगे इसलिए आनन्द कन्द भगवान् ब्रज बिहारी का भजन कर, क्यों व्यर्थ विषय वासना रूपी संसार की धूर को चाटता है, इस झूठी दुरंगी दुनियां में तुझे कुछ भी हाथ न लग सकेगा।

बहुत से लोगों का यह खयाल होता है, कि अभी तो हमारे जीवन का प्रभातकाल है, इस दुनियां में मुझे बहुत कुछ करना और जीना है। अतएव वृद्ध काल में जब कि इन्द्रियां शिथिल हो जायेंगी, या यूं कहिए सांसारिक भोगों को भोग कर विरत हो जायेंगी, तब भगवत् स्मरण करने का शुभ अवसर होगा। परन्तु एक कवि इस विचार के विरुद्ध बड़ी बुलन्द आवाज उठाते हैं, और इसका घोर विरोध करते हुए कहते हैं:-

सुमिरन करले राम का काल गहयो है केश।
ना जाने कित मारि है की घर की परदेश॥

अर्थात् मृत्यु का कुछ ठिकाना नहीं है, कौन कह सक्ता है, कि मैं बुढापे तक जिन्दा रह सकूंगा, एवं कौन यह दावा कर सक्ता है कि मेरी इन्द्रियां शिथिल होने पर भी भगवत् स्मरण के योग्य रह सकेंगी।

इस विषय पर अपनी सम्मति देते हुए, योगी-राज भर्तृहरि भी आपबीती कहते हैं पाठकगण ध्यान से पढ़ने की कृपा करेंगे।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः

अर्थात् अहा! इस जिन्दगी में मैं भोगों को न भोग सका किन्तु भोगों ने मुझे ही भोगलिया, मैं तप को न तप सका किन्तु तपों ने मुझे ही संतप्त कर डाला काल समाप्त न हुआ किन्तु मेरा ही अन्त होगया। दुःख है कि तृष्णा पुरानी नहीं हुई, किन्तु बुढ़ापा चला गया।

हमारे पाठक महानुभाव योगीराज भर्तृहरि की इस सलाह को अवश्य मान गये होंगे अर्थात् इस जिन्दगी का ठिकाना कुछ नहीं है इसलिए "काल करे सो आज कर, आज करे सो अब" जो कुछ भजन

स्मरण करना हो, वह मृत्यु को निकट समझ करते ही रहना चाहिए। कौन कह सक्ता है, कि यह डायन मृत्यु घर या परदेश से न जाने कब ले कर चलती बने। अतएव मेरा भगवद्भक्तों से यही विनम्र निवेदन है, कि वह सांसारिक द्वन्द्वों की परवाह न करते हुए उस प्रभु के स्मरण में लगे रहें। सांसारिक जन प्रायः यह कठिनाई उपस्थित किया करते हैं कि:-

उठाते थे यह ख्याल दिलमें कि सिर्फ यादे खुदा करेंगे।
मगर ये फौरन ख्याल आया, मिली न रोटी तो क्या करेंगे॥

अर्थात् हृदय में यह विचार तो रोजाना पैदा होता है, कि भगवान् का स्मरण करें परन्तु शीघ्र ही यह ध्यान में आजाता है, कि यदि रोटी न मिली तो क्या करेंगे? मेरे विचार से ऐसे कच्चे भक्त दया के पात्र हैं। उन्हें सोचना चाहिए कि जिस दीनबन्धु अनाथ रक्षक ने पेदा होने से पहिले ही माता के स्तनों में दूध पैदा किया, उसको चींटा से लेकर हाथी तक सबकी चिन्ता है, क्या वह तुम्हें कभी भूल सक्ता है। अपनी और अपने परिवार की रोटियों की व्यर्थ चिन्ता करना, मानों परमात्मा के छोटे भाई बनने की कोशिश करना है।

पाठक वृन्द! इस अमूल्य जीवन का सबसे उत्तम उपयोग भगवद् स्मरण ही है, इस उन्नति के जमाने में यदि सुन्दर २ फ्रेंच कट वस्त्र पहिने हैं तो इसमें कपड़े और कारीगर का कौशल है। यदि भव्य और रमणीय महल बना लिए हैं, तो आपने सचमुच ईंट पत्थरों की तरक्की अवश्य की है। लेकिन मैं कहूंगा कि आत्मा को आप इससे कुछ लाभ नहीं पहुंचा सके। कठोपनिषद् में यमाचार्य ने शिष्य नचिकेता को उत्तम से उत्तम प्रलोभन दिए, लेकिन उस वीर ने आत्म लाभ के सामने सबको तुच्छ समझ कर कह दिया कि "तवैव वाहस्तव नृत्य गीते" अर्थात् हे आचार्य! ये नाना वाहन और विविध संगीत कुशल अप्सरायें आपके ही लिए शोभा देती हैं। मुझे आप कृपा कर मृत्यु के प्रश्न का उत्तर दीजिये मैं तो आत्म लाभ को ही सर्वोत्तम समझता हूं। इसी प्रकार भगवान् वेद व्यास से किसीने पूछा, कि हे भगवन! इस संसार में नीच पुरुष कौन है? उत्तर में महर्षि ने कहा:-

केचिद् वदन्ति धनहीन जनो जघन्यः,
केचिद् वदन्ति गुणहीन जनो जघन्यः।
व्यासो वदत्यखिलशास्त्रविचार दक्षः,
नारायणस्मरण हीन जनो जघन्यः॥

अर्थात् कोई कहता है कि इस संसार में धन हीन पुरुष ही नीच है, और किन्हीं का विचार है कि गुण हीन पुरुष ही नीच है, किन्तु मेरा निश्चित और अभ्रान्त मत है कि इस संसार में नारायण स्मरण से हीन पुरुष ही अधिक से अधिक नीच है।

भक्तों की समझ में यह बात आगई होगी, कि जीवन की एकमात्र सफलता भगवद् स्मरण से ही है। जिस प्रकार एक नगर में हर एक मकानदार यदि अपने २ मकान को साफ़ करें तो पूरा शहर का शहर साफ और स्वच्छ हो जाता है, वैसे ही यदि प्रत्येक भक्त अपनी २ आत्मा को निर्मल और पवित्र बनाने के लिए भगवद् स्मरण करने लग जाय तो मैं विश्वास पूर्वक कह सक्ता हूं कि हमारा पूरा राष्ट्र (भारतवर्ष) आत्मवान् और शक्तिवान् हो सकता है। क्योंकि बलों का बल आत्म बल है। अतएव पाठकों से अन्त में निवेदन है। कि:-

तेरे भावे कछु करो भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठ के अपनो भवन बुहार॥

काम से राम अत्यन्त दूर है

[ले० श्री० स्वामी आत्मानन्द जी]

काम-अप्राप्त विषय की प्राप्ति करने वाले कारण के अभाव में यह विषय हम को प्राप्त हो इस प्रकार की चित्त वृत्ति का नाम काम है। यह काम ही सब अनर्थों का बीज है, सर्व अनर्थों का कारण है ब्रह्मा से कीट पर्यन्त सब काम के मारे हुए ही अपने निज स्वरूप रामसे अत्यन्त दूर होगए हैं और जिन्होंने इस महान् शत्रु काम को जीत लिया है वेही निज स्वरूप राम को प्राप्त हुए हैं। इसलिये जो राम को चाहते हैं उनको उचित है कि काम को त्यागें। काम को त्याग ने पर राम दूर नहीं है, राम सर्वत्र व्यापक है, घट घट वासी है। काम का ही परदा है, परदा हटते ही झट दर्शन होता है, फिर किसी प्रकार के परिश्रम की आवश्यकता नहीं है।

'जहां काम तहं राम नहीं जहां राम नहि काम।'

एक जीवाराम नामी मनुष्य अपने अवध पुर में निरतिशय सुख चैन से स्वतंत्रता सहित वास करता था। एक समय उसे यह विचार उत्पन्न हुआ कि मेरे बहुत सी प्रजा होवे और मैं राजा होऊं! बस, क्या था? सत्य संकल्प सिद्ध होता ही है, झट प्रजा उत्पन्न हुई कोई शुभ गुण वाली और कोई अशुभ प्रवृत्ति वाली हुई। जब तक शुभ प्रवृत्ति वाली प्रजा का जोर रहा तब तक तो आनन्द से दिन व्यतीत हुए और सर्व सुख का भागी रहा जब अशुभ प्रजा का जोर बढ़ा तो कुछ काल तक आपस में शुभ अशुभ दोनों प्रजाओं का संग्राम होता रहा और अशुभ प्रजा जब बलवान् होगई तब तो शुभ प्रजा दब गई यहां तक कि जीवाराम रूपी राजा पर भी नौबत आई। तब जीवाराम ने कहा, भाई! हम पर तो अपना दखल मत करो हमतो तुम्हारे राजा हैं। यह सुन प्रजा बिगड़ी और कहने लगी 'हमारा बनाया हुआ राजा है अब हम तुमको राजा बनाना नहीं चाहते हमारा राज्य प्रजा तन्त्र ही रहेगा, यदि हमारी इच्छा के अनुसार काम करो तो नाम के राजा बने रहने देंगे, दखल प्रजा का ही रहेगा। तुम अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकोगे। यह सुन कर जीवाराम कुछ विचार में पड़ा और निश्चय किया कि अब क्या बस चल सकता है शुभ प्रजा बलहीन पड़ी है।

यह देख शुभ प्रजा ने जीवाराम से कहा कि आप हमको सत्ता देवें तो हम इनको जीत लेवें परन्तु राजा ने उनको कमजोर देख कर उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और अशुभ प्रजा की बात को स्वीकार कर लिया। क्या करे मोह में फंस गया, प्रजा तो अवधपुरी की लंकापुरी हो गई, अशुभ प्रजा जीवाराम को मारने को तैयार हुई। उन्होंने जीवाराम की रानी को भी चुरा लिया और राज्य में अपना डंका बजा दिया। जीवाराम रूपी राजा अत्यन्त दुःखी

हुआ और रानी की बहुत खोज की जब न मिली तब शुभ पूजा को जगाया और अपनी दुर्दशा का संपूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। शुभ पूजा अति दुःखी हुई अब हम क्या करें हम तो तैयार हैं परन्तु शस्त्रहीन हैं' तब जीवाराम राजा ने विचारा कि सत्ता देने वाला राजा तो मैं ही हूं, अब इनको सत्ता देना कम करो और शुभ पूजा को सत्ता देना शुरू करो! ऐसा विचार कर जब सत्ता देना शुरु किया तो वह बलवान् होती गई। यहां तक कि उन्होंने बिना ही शस्त्र के सबको मार गिराया और राजा से जाकर सुनाया कि उन्होंने सारी अशुभ पूजा मार दी है, तब अपनी रानी को भी प्राप्त किया। जब राजा ने देखा कि सारी पूजा मरी पड़ी है और इनका मुखिया मायावी होने के कारण गुप्त रूप यानी सूक्ष्म रूप से शुभ पूजा में प्रवेश कर गया है, इनसे भी मुख फेरो और अपने पहिले जैसे थे उसी हालत में सुख चैन से वास करो। यह विचार करके वह अपने आदि स्वरूप की जिज्ञासा से जगह व जगह तलाश करने लगा। जहां जाय वहीं यह प्रश्न करे कि मैं भूल गया हूं मुझे कोई बतादे। घूमते घूमते दैववशात् एक संत के पास पहुंचा और सविनय दण्डवत् करके आज्ञा पाकर बैठ गया। जब अवसर देखा नम्रता पूर्वक अपना सब वृतान्त कह सुनाया।

संत-तूही देख अपना पता, तुझको ही नहीं है और मुझ से पूछता है। खैर, धीरज रख, मैं तुझे समझाऊंगा वसे ध्यान से समझना। बता तू अपने को कौन जानता है?

जीवारामः-मैं अपने को राजा जानता हूं।

संतः-राजा तो तेरी उपाधि है, उपाधि को त्याग कर बता तू कौन है?

जीवारामः-मैं जीवाराम नामी मनुष्य हूं।

संतः-यह नाम तो तेरे शरीर का है।

जी०:-तो मैं शरीर हूं।

संतः-जब तू सो जाता है तब शरीर तो पड़ा रहता है और तू जगह जगह घूमा करता है।

जी०:-तो मैं स्वप्नीय जीव हूं।

संतः-जब तू गाढ़ निद्रा में सो जाता है तब शरीर का भी भान नहीं रहता और न स्वप्न का, तब उठ कर कहता है कि मैं आज सुख से सोया कुछ भी नहीं जाना।

जी०-तो मैं सुख रूप हूं, श्री महाराज! समझ गया सुख रूप आत्मा को वेदों में कहा है, सो मैं वही हूं।

संतः-आत्मा को अविनाशी निरतिशय सुख वाला कहा है सो यह निरतिशय सुख कहां है?

जी०:-ठीक है, महाराज! तो मैं यह सुख रूप भी नहीं हुआ जो मैंने जाना है, तो आप ही बताइये कि मैं कौन हूं क्या मैं प्राण हूं?

संतः-प्राण को तो तू कहता है मेरा प्राण सुखी है, मेरा प्राण दुःखी है और मेरा प्राण, "मैं" से 'मेरा' से भिन्न होता है।

जी०:-तो मैं मन हूं।

संतः-मन को भी तू कहता है मेरा मन दुःखी है।

जी०: तो मैं बुद्धि हूं!

संतः-बुद्धि को भी तू कहता है मेरी बुद्धि अच्छी मेरी बुद्धि बुरी है।

जी०:-महाराज! अब यहां से आगे समझ में नहीं आता अब आप ही कृपा करके समझा दीजिये।

संतः-तू इन सब का जानने वाला साक्षी घट दृष्टा की नाईं इनसे न्यारा है सो तूही अविनाशी है, एक रस है।

जी०:-मैं तो मरता हूं, जीता हूं, यानी नष्ट व उत्पन्न होता हूं, अविनाशी कैसे हूं, घटता बढ़ता हूं एक रस कैसे हूं।

संत:- यह सब शरीर के धर्म अपने में कल्पना करता है तू कल्पना करना छोड़ तब समझेगा देख ऊपर समझ में आया हुआ फिर लौटा दिया।

जी०:-कल्पना कैसे है ?

संत:-देख बालकपने में तूही था सो जवानी में तूही रहा, तू तो नहीं बदला और बुढ़ापे में तूही है। जो बालक पने में था, जवानी में था, और कल भी तूही था, आज भी तू वही है, और कल भी तू वही रहेगा ऐसे ही शरीर के अन्त में भी तूही रहेगा। तू कभी नाश नहीं होता। तू उपाधि से सम्बन्ध कर भ्रान्ति से उसे अपने में मानता है इस भ्रान्ति को त्याग, भाग त्याग करके लक्ष्य कर, तू अविनाशी एक रस है। तेरा कल्पांत में भी नाश नहीं होता, तू साश्वत है, तू अचल है सर्व का आधार है और तूही अधिष्ठान है, तू अक्रिय है, तूही सत् चित्त आनन्द रूप है।

जीवाराम कुछ काल मौन होकर श्री गुरु महाराज के चरणों पर गिर गया और सावधान हो कर बोला "ठीक है महाराज ! मैं अपने ही संकल्प से बधा था मेरे में बन्ध मोक्ष कहां बनता है ? धन्योहम्, धन्य गुरु। कृत कृत्योहम ! यह काम ही शत्रु है, राम से दूर करता है, नहीं तो दूर कहां नेरे दूर कहना भी नहीं बनता।

पाठको ! यही जीवाराम नामी जीव है, यही अपने शौक् (काम) से बन्धन को प्राप्त हो दुःखी हुआ, जब शौक् यानी काम को छोड़ा तो शुभ वासनाओं को जगाया और उनकी सहायता से अशुभ संस्कारों को जीता। शुभ वासनाओं में और अशुभ वासनाओं में स्वाभाविक विरोध है, जैसे कुत्ता और बिल्ली में जब शुभ वासना होती है तब अशुभ नहीं रहने पाती और अशुभ होती है तब शुभ नहीं रहने पाती कुसंग से शुभवासना नाश हो जाती है और सत्संग से अशुभ वासना नष्ट हो जाती है, तब शुभ प्रज्ञा रूपी शुभ संस्कार रहगए तब गुप्त रूप से मायावी होने के कारण अशुभ का मालिक अहंकार घुस गया, तब इससे भी कुछ काम चलता न देख कर इनको भी छोड़ना चाहा, अपने आदि स्वरूप की खोज में निकला तब संत रूपी गुरु द्वारा अपने को जाना, और पूर्व की तरह सुख चैन से रहने लगा, जीवाराम को बुला गुरु काम के स्वरूप को समझाने लगे।

एक चेतनसिंह क्षत्री का पुत्र आभास सिंह पिता के दिये हुए धन को अपने पिता से अलग समझ अपना अलग ही व्यवहार करने लगा। कुछ काल तक अकेला रहने के कारण मन में विचार किया कि मेरे सन्तान होवे तो अच्छा हो। ऐसा विचार कर तेज सिंह मंत्री की पुत्री निरंकुशी देवी से विवाह किया, पर सन्तान न हुई। तब तो दूसरी शादी की फिराक् में घूमने लगा, परन्तु किसी कुलीन कुटुम्ब वाले ने शादी नहीं की, कि एक स्त्री तो इस के मौजूद है, हमारी लड़की जायगी तो आपस में कलह होगी और अवस्था भी इसकी बड़ी है। यही विचार कर चुप हो जाते थे यह चर्चा एक छोटी जाति के किसान ने सुनी, जिसका नाम अज्ञान सिंह था, वह आभास सिंह से मिला और अपना बड़ा वैभव बतलाया और अपनी पुत्री जिसका नाम फरफंदी था (यथा नाम तथा गुण ही थी बिना

कलह किये मुहं तक न धोती यदि मुहं भी धोया तो विना खून खच्चर किये रोटी न खाती और रोटी खाते ही ताक़त बढ़ी तो मुहल्ला में गई और अड़ोस पड़ोस में जाकर किसी को कुछ और किसी को कुछ अनेक प्रकार का दुःख दिया करती थी जब कोई इसके यहां शिकायत करने आते तो इसकी माता भी डटी उनसे ही लड़ने को तैयार हो जाती मुहल्ले वालों की नाक में दम होगई, बिचारे आंख मुंह दबाए उल्टे लौट जाते थे समझे सोई हारे कोई एक बात भी कहे तो उसके बदले में दस बातें सुने। इस कारण से बिचार चुप बने रहते। उससे विवाह करने की बात चीत की और आभास सिंह के कुटुम्बी लड़की देखने को गए और अज्ञान सिंह ने बहुत सत्कार किया लड़की दिखलाने का प्रसंग छेड़ा गया। तब तो अज्ञान सिंहने कहा कि लड़की पाठशाला में पढ़ने गई है और बातों चीतों में ऐसा भुला दिया कि वे ज्यादा चेष्टा न कर सके और आभास सिंह तो काम के कारण व्यामोह को प्राप्त हो कर बोला अच्छी बात है आपकी लड़की की शादी हमको मजूंर है। तब साथियों ने विचारा कि जिस काम को आए थे वह तो हुआ ही नहीं, पर आभाससिंह की निगाह उसकी ओर देख कर चुप होरहे। चलते समय कुटुम्बियों से पूछा तो उन्होंने जवाब दिया कि अज्ञान सिंह ने क्या कहा है तो कुटुम्बियों ने कहा कि लड़की पाठशाला में पढ़ने गई है। तब पड़ोसियों ने कहा कि आपकी राजी है हस्ताक्षर तो मुड़गेरी पर पड़े हैं। लोग आभास सिंह की सहायता बिना अधिक छानबीन न कर सके और पड़ोसियों का गूढ़ वचन समझ भी न सके।

पाठको! गूढ़ वचन क्या था? सो सुनाते हैं कि लड़की सबह होते ही जंगल को जाती थी वहां से गोबर बीन कर अपनी छत के किनारों पर उपला अर्थात् कंडा बनाकर थाप देती थी जिसको कहीं कहीं पाथना भी कहते हैं। आभास सिंह के विवाह का लग्न निकाला गया पण्डितों ने जो गण मिलाए थे, और आभास सिंह से जताए थे लड़की के भी गण न मिलने पर आभास सिंह विवाह की अत्यन्त कामना वाला होने से और पण्डितों को धन प्राप्ति की कामना होने से कोई ठीक २ निर्णय नहीं हुआ और आभास सिंह के साथ फरफंदी का विवाह होगया और सात, अथवा तीन फेरे डाले गए। सारांश यह कि दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध होगया अब फरफंदी को लेकर जब घर पर आया और बड़े समारोह के साथ घर के भीतर (जिसको छार लेना भी कहते हैं) ले गया और मंगलाचार होने लगा।

(अपूर्ण)

कलियुग और श्रीभगवन्नाम।

[लेo श्री पंo रामप्रसाद जी शर्मा]

प्रिय पाठको! बड़े ही हर्ष कि बात है, की उस परम दयालु सच्चिदानन्दघन परमेश्वरने हमारे ऊपर बड़ा ही कृपा करके, इस संसार रूपी सागर में भक्ति रूपी नवका का आविष्कार किया है। इस भक्ति रूपी नवका में हर महीने, अच्छा २ सीढियां बतलाई जाता हैं, जिनके ऊपर मनुष्य चढता चला जावे तो संसार रूपी सागर के पार होकर कल्याण को प्राप्त हो सक्ता है। क्योंकि सारे युगों में श्रेष्ठ युग, अल्प समय में ही कल्याण का देने वाला इस समय कलियुग वर्त रहा है। देखिये कलियुग और श्री भगवन्नाम के बारे में हमारे

ऋषी महर्षि क्या कह गये हैं।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

कलियुग में केवल हरिनाम ही कल्याण करने के लिये अति उत्तम है। इससे सुलभ कोई दूसरा उपाय नहीं है।

ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम्॥
(विष्णु पुराण)

सतयुग में ध्यान करने से त्रेता में यज्ञ करने से, द्वापर में पूजा करने से, जो फल मिलता है वही फल कलियुग में केशव के गुण गान से मिलता है।

कलेर्दोषनिधे राजन् अस्ति ह्येको महान्गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबंधः परं व्रजेत्॥

इस श्लोकसे स्पष्ट विदित होता है, कि कलियुग में सब से बड़ा गुण यही है कि श्री कृष्ण भगवान् के गुण गान से ही संसार के बन्धन से छुट कर, मनुष्य परमेश्वर को पा लेता है।

यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन यत्।
द्वापरे यच्च मासेन अहोरात्रेण तत् कलौ॥
तपसो ब्रह्मचर्यस्य जपादेश्च फलं द्विजाः।
प्राप्नोति पुरुषस्तेन कलि साध्विति भाषितम्॥२॥

सतयुग में दशवर्ष परिश्रम करने से, त्रेता में एक वर्ष परिश्रम करने से और द्वापर में एक मास परिश्रम करने से जो फल मिलता है वही अब इस कलियुग में एक रात्री दिन अर्थात् २४ घंटे में श्री भगवन्नाम के कीर्तन द्वारा मनुष्य को मिल जाता है।

प्रिय पाठको! इससे सुलभ और क्या हो सक्ता है। ऐसे समय को कल पर रखना उचित नहीं है। कहा भी है।

काल भजंता आज भज, आज भजंता अब।
पलमें परलय होयगी, फेर भजेगा कब॥

जो मनुष्य ऐसे सुअवसर को त्याग देते हैं, वह देहधारी कहाने के भी अधिकारी नहीं हैं और न उनकी माता को ही पुत्रवती होने का लाभ होता है।

देह धरे का यह फल भाई, भजिये राम सब काम बिहाई।
पुत्रवती युवति जग सोई, रघुबर भक्त जासु सुत होई॥

इसलिये उस कल्याणकारी श्रीभगवन्नाम का कीर्त्तन, और जप का करना हम सब के लिये परमोत्तम है। "बोलो श्री भगवन्नाम की जय"

गोपदेवी लीला

गतांक से आगे

[ले० भक्त श्री मथुराप्रसाद जी]

पद नं० १०

वृन्दा विपिन युगल वर हँसि हँसि टहल रहे हैं।
आनंद प्रेम हिल मिल मानों कि चल रहे हैं॥
चितवन में चुलबुलाहट अधरन में मुसकराहट।
चहरे हरे भरे हैं ज्यों फूल खिलरहे हैं॥
दर्शन की लालसा में ब्रज नारि उठकें धाईं।
भूषण वसन बिसारे नहि ढंग समझ रहे हैं॥

चेतन्य जड़ सबों की ऐसी दशा हुई है।
कोई तो गिर रहे हैं कोई सम्हल रहे हैं॥
श्यामा सखी विशद गुण चढ़ि २ विमान ऊपर।
पुष्पों की करते बरसा हाथों उछल रहे हैं॥

कुछ काल ऐसे ही परमानन्द से बीतने पर गोपदेवी बोलीं। गोपदेवी-हे व्रजेश्वरी नंद नगर या ठौर तें दूर है और दिन मुदो चाहतु है अब आज्ञा देउ प्रातः काल फिर आजाऊंगी यह सुन कर श्री जी सहम जाती हैं और प्रेम वश हो चकरा कर पृथ्वी पर गिर जाती हैं यह देख सखियां घबरा कर झुंड के झुंड चारों ओर से दौड़ी आती हैं और चंदन फूल इत्र सुंघाकर पंखा झलती हैं और शीतल जल छिड़कती हैं जब श्री जी कुछ चेतीं तब गोप देवी कहती हैं।-हे राधे इतनो शोच क्यों करो हो गैया मैया भैया कीसौगंध है प्रातः काल अवश्य आजाऊंगी। ऐसे कहके गोपदेवी बने हुये श्री कृष्ण महाराज गोकुल को जाते हैं।

बहरात बीत गई दूसरे दिन गोपदेवी फिर राजा वृषभानु के भवन में आई हैं और श्री जी जो अति व्याकुल हो रही हैं देखते ही ऐसी प्रसन्न होती हैं जैसे किसी निर्धन को एक साथ रत्नभांडार मिल जाय-परन्तु आज गोपदेवी का चहरा प्रफुल्लित नहीं है और मुस्कराहट की जगह उदासी छाई है जिसका श्री जी पर तुरन्त बड़ाअसर हुआ चारों ओर सून सान होन लगी श्रीजी से कुछ समय तक तो बिलकुल बोला ही न गया फिर बहुत मध्यम स्वर से कहती है।-हे भद्रे तुम ऐसी उदास क्यों हो देखो एकतो ब्राह्मण दूसरे श्री कृष्ण को भक्त इन दोउन पैतो मेरो बस नाय है और जा काहू ने तुह्मारो कछहू बिगारो होय वाको मैं तुरन्त उपाय करि सकति हौं और जितनो धन सोनो भूषण आदि चाहिये सो सब याही समय मंगाय देऊं मैंने तुमको जी से मित्र बनायो है जो मिताई करिके पिछे से कपट करै अथवा वा पक्ष को निर्वाह न करै वह कपटी है वाको धिक्कार है।-बहुत संकोच से गोप देवी बोली।-हे राधे मैं गोवर्धन पर्वत के साकरी खोर में गोरस बेचिवे जाय रही मार्ग में नन्द को छोना मिलगयो मो अबला को बरजोरी रोकलियो और कर पकरि के दान मांगन लाग्यो चार ओर ते वा के ग्वाल बालन ने घेरलियो जब मैंने हाथ छुड़ायबे कूं झटक्यो तब मेरी मटुकिया फोरि दई और हंसि के चिलदियो याही कारण मेरो जी बहुत बिगरो है। देखो जाति को गोप-रंग कारो-न वाके धन न बल न सुन्दरताई न कोई अच्छे ढंग गैया बछरन को चरावन हारो सो ऐसी अनरीति करै है जबते मैंने सुनि है कि तुमने वा निर्मोही से नेहको नातो जोड़ो है तब से मोको बड़ी चिंता और उदासी है सोजो मेरे कहन को तुम को कुछ हू विश्वास होय तो तुम वाको प्रेम अवश्य छोड़ देउ और यह पद गाकर सुनाती हैं।

पद नं० ११

कृष्ण गुन सुनिले सखी धरि ध्यान।
जासे प्रीति करी तुमराधे सो है औगुन खान॥
गोरेनंद यशोदा गोरी वो कारो कस कान।
मात पिता को तोल न वाको माया कपट निधान॥
चोरी अरु व्यभिचार कर्म में अति ही चतुर सुजान।
बंशी बजाय हरै तनमन धन ब्रज वासिन के प्रान॥
निर्धन कायर नीति रहित निर्मोही शील अजान।
अस मथुरेश निठुर है दुर्मति तज सखी वाको ध्यान॥

(अपूर्ण)

व्रज के अनुकूल

[ले० श्रीमती व्रज कुमारी देवी विदुषी]

बसो मन कालिन्दी के कूल ॥
जमुना तट पे लहलहा रहीं, द्रुम बल्ली अरु फूल ॥१॥
गव्वन संग धावत नंद सुत के, फहरत पीत दुकूल ॥२॥
बदन मयंक की छवि अनूपम, लखि सुषमा की मूल ॥३॥
मृदुल मनोहर मुरली धुनिसुन, उरमें बेधत शूल ॥४॥
अब वहीं जाय लखो रेमन, जो व्रज के अनुकूल ॥५॥

रुलाये हैं

[ले० श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी आश्रम]

केते शूर भये जग में एक हु न रह्यो तिनमें,
सारे बली काल ने पकर बुलाये हैं।
योगी व्रती सिद्ध ज्ञानी पंडित मुनी ब्रह्मज्ञानी,
सब को भ्रमाय निज माया ने भुलाये हैं।
काहू को तो रंक किया मोह मद बंध लिया,
काहू के शिर छत्र धरि चंवर डुलाये हैं।
माया खेले मायापति प्रभु जिनकी मन्दमति,
कामी क्रूर दुष्ट क्रोधी लंपट रुलाये हैं।

सुखमय जीवन

दुःख वाद

[ले० पं० श्री सनत्कुमार जी निर्मल]

संसार के विषय में संसारियों की दो सम्मति हैं-कुछ तो उसे दुःखमय और कुछ उसे सुखमय बतलाते हैं। जो दुःख वादी हैं वे कहते हैं:-

अयि दुःखदेव तुह्मारी महिमा अत्यन्त गरिमायुक्त, अचिन्त्य और अद्भुत है, चाहे कोई तुह्मारे प्रति योगी-सुख से मुक्त हो परन्तु तुम्हारे विकट पाश से कोई कैसे छूट सकता है? जननी के मोदमय अंक से नहीं २ उसके गर्भ से ही प्राणी आपके चक्कर में फंस जाता है फिर क्या किसी ने उसको मरते दम तक आपके पाश से निकलते देखा है?

गर्भ में प्राणी के ऊपर जिस प्रकार आपकी दया होती है चाहे आज हम उसे विस्मृति के गर्त में गिरा कर गरूर करें पर नहीं शास्त्र हमें याद दिलाता है कि उसदिन तुम यों कहरहे थे:-

'अहो दुःखोदधौमग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम्'।

(गर्भोपनिषद्)

क्या आज हम इस दशा का अनुभव नहीं कर सकते? नहीं क्यों, जब कठोर कारागार में पड़े किसी मनुष्य की हीनावस्था अथवा दयनीय दशा का अनुभव कर सकते हैं, तब कोई कारण नहीं कि उस कठोरातिकठोर गर्भ कारागार का अनुभव कर आपकी सर्व व्यापकता को स्वीकार न कर सकें। जिस तिस प्रकार इस भयंकर कारागार से जब हमको मुक्ति मिलती है, और प्रेम प्रतिमा माता की सुखमय गोद में मोद से काल व्यतीत करने लगते हैं, तब कहने को तो यह अवस्था परम सुखद एवं चिन्ताओं के उस पार है परन्तु देव! हम अपने हृत्पट पर हाथ रख यह नहीं कह सकते कि हां यह अवस्था चिन्तातीत एवं नितान्त सुखमय है।

जब इसी अवस्था की यह व्यवस्था है तब इसके बाद आनेवाली जरावस्था पर्यन्त जो अनेक अवस्थाएं हैं क्या उनमें प्राणी आपके पाश से मुक्त हो सकता

है ? कदापि नहीं, निदर्शनार्थ शैशवावस्था ही को लीजिये कभी मशकादि दंशित करते हैं तो कभी अन्यान्य त्रिदोषज व्याधियें व्यथित किये डालती हैं ऐसे विषम समय में सिवाय प्रगाढ रोदन के हम आपका क्या प्रतिकार कर सकते हैं ? कुछ और बड़े होते हैं तो पढ़ने लिखने आदि की महती चिन्ता सन्तत चिन्तित किया करती है फिर कैसे मानलें कि आप इस समय हमें भूल बैठते हैं ? यहीं ही अलम् नहीं कमनीय कामिनी के काम दाम में आबद्ध होकर भी यदि हम चाहें कि आपकी दृष्टि हम पे न पड़े तो यह भी नहीं हो सकता । क्योंकि आपकी माया अपरम्पार और शक्ति अचिन्त्य एवं अमोघ है अतः वहां भी हमें विलासवती के वियोग में मानसी के मान रक्षण में, रमणी के रम्य वपु की लावण्याग्नि में अपने तन, मन, और धनका हवन करते हुए आपके दर्शन होही तो जाते हैं ।

संसार यह न समझे कि यह भोग वादियों की बकवाद है ना सामान्य सद्गृहस्थ भी इस उदर दरी के भरण में कुटुम्ब के पालन, पोषण और रक्षण में न जाने कितनी वार आपके दर्शन करता है। आपके अनेक रूप हैं, यह हो सकता है कि आप किसी को किसी रूप में और किसी को किसी रूप में दर्शन दें किन्तु यह तो असम्भव ही है कि कोई जीव धारी आपके दर्शन से अपने जीवन को वञ्चित रख सके ।

आप किसी को विविधामय रूप से, किसी को दैविक वेदनाओं के विकराल वबाल से, और किसी को आत्मिक आधियों के अधिकार में अर्पित करके । यदि स्पष्टतया पूछना चाहते हो तो किसी को पुत्र शोक में, किसी को धनाभाव में दर्शन देही तो देते हो । या यों कहिये, कि कोई धनोपार्जन के अनन्त कष्टों के रूप में, कोई पुनरपिजननम्पुनरपिमरणम् के चक्र में, कोई दुष्काल काल के गाल में कोई पुत्र कलत्र की वियोग व्यथा में कोई यह तो मुझको मिल गया पर वह और मिलना चाहिये की आशा के पाश में आपकी विलक्षण मूर्ति का दर्शन कर ही तो लेता है ।

विश्वास नहीं होता कि इस अखिल विश्व के विशालाङ्गन में ऐसी भी कोई व्यक्ति है जिसके गर्व को खर्वित करने के लिए आपने अपना हाथ न बढ़ाया हो, ओफ ! बड़े २ वीरों के वीरत्व को सुधियों की धियों को, विद्वानों की विद्या और धनाढ्यों के धन को आपके पाद प्रहार से जो ठेस पहुंची है क्या इसकी कोई सीमा है ?

कहां तक कहें लावण्यवती नव यौवना रमणी का वह रम्य वपु जिसके विषय में कवि कहता है:-

वक्त्रं चन्द्र विकासी पंकजपरिहासक्षमेलोचने ।
वर्णः स्वर्णमपाकरिष्णुरलिनी जिष्णुः कचानां चयः ॥
वक्षोजाविभकुम्भविभ्रम हरौ गुर्वी नितम्बस्थली ।
वाचां हारि च मार्दवं युवतिषु स्वाभाविकं मण्डनम्
(भर्तृहरि)

एक दिन अग्नि देव की गोद में स्वाहा हो जाता है तो फिर कवि यों कहता है:-

परम धिनोनी हाय, पड़ी खोपड़ी भूमि जो ।
कहत सुनाय २ जीवन निपट अनित्य यह ॥

सुन्दर उपवनों की नवजात पत्र पुष्पों से विभूषित वीरुधावली अग्नि देव के चारु चरणों में अपने अस्तित्व को समर्पित कर बैठती है। जिनकी अलौकिक सुषमा की ख्याति जगद्विख्यात थी, वह अनुपम कलाकौशल के भण्डार, अतुल धन राशि के

आगार, खान पान, और भोग विलास के अनेक सम्भारों से सुशोभित, सुन्दर सौम्य और शक्ति शाली नरपुङ्गवों से युक्त, अनेक नगर भूमिसात होगये, हो रहे हैं और होते रहेंगे। दुःखदेव! कहिये तो इससे अधिक और क्या दुःख होगा? तभी तो संसार के अनुभवशाली कवि ने कहा है:-

ऐसा दुनियां न कभी रंज से खाली देखा।
जैसे गुलशन में नहीं गुल से कभी खार जुदा॥

इसी की मानों व्याख्या करते हुए भर्तृहरि ने लिखा है कि आयु, यौवन, द्रव्य, भोग और भोग-वती में कोई भी ऐसा नहीं जहां अपने चित्त को लगा दुःख देव से पिण्ड को छुड़ा सकें। आयु को ही लीजिये यह तो जलकल्लोलों के समान चंचल है, फिर जिस यौवनावस्था की कान्ति के चाकचक्य में चकित हो रहे हो यह भी तो निगोड़ी अल्प काल की ही पाहुनी है। अनर्थों के मूल अर्थ में व्यर्थ मत फंसना यह तो मन में जैसे संकल्प उठते और विलीन हो जाते हैं ऐसे हैं भला इनको कोई कैसे स्थाई कहेगा? भोगों के भंवर से भी बचे रहना क्योंकि ये भी तो चपला से चपल और उतने ही भयावह हैं। और देखना! कहीं मुग्धाङ्गनाओं के प्रगाढ़ालिङ्गन में मुग्ध हो दुःख देव को मत भूल जाना क्योंकि यह भी तो चिरस्थाई नहीं। जब इन सब का यही हाल है फिर संसार में रहा ही क्या जिसमें दिल लगा कर दुःख के दाम से छूट सकें।

आयुः कल्लोललोलं कतिपयदिवसस्थायिनी यौवनश्री।
रर्थाः संकल्पकल्पाजनसमयतडिद्विभ्रमाभोगपूराः
कण्ठाश्लेषोपगूढं तदपिच नचिरं यत् प्रियाभिः प्रणीतम्।
ब्रह्मण्यासक्त चित्ताभवत भवभयाम्भोधि पारं तरीतुम्॥

बाबा! भर्तृहरि जी तो आपके प्रतिद्वन्दी को दूर से ही प्रणाम-किये बैठे हैं, वह तो कहते हैं कि महा अपावन गर्भ कारावास में, अरे कारावास क्यों नरकागार में कहो और वहां भी मुक्त तनु नहीं वरन् मितस्थान में गठड़ी के समान बन्धे हुए जैसे तैसे बाहर आये थे और फिर देखा कि युवावस्था में विलासवती के विलक्षण विलास में तो अवश्य ही दुःख देव से वियोग होगा परन्तु वहां भी मम्मटा-चार्य के कथनानुसार, संयोग और वियोग दोनों ही में दुःख से वियुक्त न हुए।

अदृष्टे दर्शनोत्कण्ठा दृष्टे विच्छेदभीरुता।
नादृष्टेन न दृष्टेन भवता लभ्यते सुखम्॥

अब वृद्धावस्था की कथा सुन लीजिये वहां तो ललित ललनाओं से निरादर पाकर शोक के सागर में ही निमग्न होना पड़ता है फिर मनुष्यो! जरा सोच विचार कर उत्तर देना कि कहीं लेश मात्र भी सुख है? यदि है तो बताओ न:-

कृच्छ्रेणामेध्य मध्ये नियमिततनुभिः स्थीयते गर्भमध्ये।
कान्ताविश्लेषदुःखव्यतिकरविषमो यौवने चोपभोगः॥
वामाक्षीणामवज्ञा विहसित वसतिर्वृद्धभावोऽप्यसाधुः।
संसारे रे मनुष्या? वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किञ्चित्॥

वसुधा के विशालाङ्गन में सुख का लवलेश न पा सहसा हृदय से हृदयद्रावक और दिल को चाक २ करने वाले ये शब्द निकल पड़ते हैं:-

दुनियां! हा! दर्द खोने आये थे तेरे दरपे।
पर वे दर्द यहां पे ए? बेदर्द न देखा (निर्मल)

जब इस बेदर्द दुनियां में कोई भी वे दर्द नहीं तो क्या स्वर्ग में सुख मिलेगा? यदि हां तो, चलिये वहीं चलें। स्वर्ग की तैयारी करते समय श्रीहर्ष का यह काल कथित पद्य सुनाई पड़ा:-

(अपूर्ण)

भजन

नैना भये अनाथ हमारे ॥ टेक ॥
मदन गोपाल वहां ते सजनी,
सुनियत दूरि सिधारे ॥ १ ॥
वे हरि जल हम मीन बापुरी,
कैसे जिवहिं निनारे ॥ २ ॥
हम चातक चकोर श्याम घन,
वदन सुधानिधि प्यारे ॥ ३ ॥
मधुबन बसत आश दर्शन की,
जोइ नयन मग हारे ॥ ४ ॥
सूर श्याम करी पिय ऐसी,
मृतक हूते पुनि मारे ॥ ५ ॥

२

तू अगाध तू अगाध तू अगाध देवा ॥
निगम नेति नेति कहे जाने नहीं भेवा ॥ टेक ॥
ब्रह्मादिक विष्णु शंकर शेषहू बखान ।
आदि अन्त मध्य तूही कोऊ नहीं जाने ॥ १ ॥
सनकादिक नारदादि शारदादि गावैं ।
सुर नर गन्धर्व मुनि कोउ नहीं पावे ॥ २ ॥
साधुसन्त थकित भये चतुर्बुध सयाने ।
सुन्दर दास कहाकहे अतिहि हिराने ॥ ३ ॥

३

एक नाम शिव ही आधार ॥ टेक ॥
केश कलाप में गंगाधर की,
नूतन चढ़ें फुहार ॥ १ ॥
भाल ललाम में इन्दु बिराजे,
ताकी शोभा अपार ॥ २ ॥
शैल सुता वाम अंग में राजे,
गल मुंडन के हार ॥ ३ ॥
बृज याचत है तुमसों प्रभुवर,
दो भक्ति दातार ॥ ४ ॥

४

घनि२ चातक जीवो तिहारो ॥ टेक ॥
विरही जन के दुःख हेरनको,
तुम सम नाहि अन्यारो ॥ १ ॥
तुम सम बन्धु नहीं विरही को,
दुःख बटावन हारो ॥ २ ॥
कुहू निशा में पिव२ रटिवो,
सुनत महा दुःख कारो ॥ ३ ॥
श्याम बिना हम दुःखियन को अब,
तरफरात जिय भारो ॥ ४ ॥
को जाने जेहि लागे न श्यामहि,
नैन बान कजरारो ॥ ५ ॥
विरह अगनि के धूम सासहि,
हियरो भसम करडारो ॥ ६ ॥
कब मिलवें रे चातक बृज को,
मोहन प्राण अधारो ॥ ७ ॥

५

सुमती दिजो आप गणेश ॥ टेक ॥
ऋद्धि सिद्धी सेवा करें थारी,
ध्यावत सकल सुरेश ॥ १ ॥
जन मन रंजन विघन निकन्दन,
पूजा करूं हमेश ॥ २ ॥
ज्यां घट ज्यां ताको दुख टट जा,
मिट ज्या भरम कलेश ॥ ३ ॥
भक्त जनों का कारज सारो,
क्या घर क्या परदेश ॥ ४ ॥

भक्ति के संरचक

भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१११)
लेफ्टेनेन्ट सरदार रघुबीरसिंह जी सांधोवालिया राजा सांसी अमृतसर	१११)
पं० जैनारायण जी भोड़ाकला, गुड़गावां	१२०)
धर्म सीह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१०१)
आनरेबिल सरदार जुगेन्द्रसिंह जी मनिस्टर आफ ऐग्रीकलचर लाहोर	"
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	"
राव बहादुर, कप्तान राव बलबीर सिंह जी ओ, बी, ई, रामपुरा	५१)
प्रो० बाबूलाल जी भार्गव एम. ए. दिल्ली	४२)
राव श्रीराम जी रईस नांगल	२५)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
बाई लछमादेवी भगनी राव जगमालसिंहजी रईस नांगल	"
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	"
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया दिल्ली	"
श्री भक्तायीदेवी धर्मपत्नी लाला नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी	"
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी लाला प्रभुदयाल जी "	"
लाला कृष्णलाल जी जींद	२५)
लाला भागीरथमल कटरा लच्छूसिंह देहली	२१)

सहायक

पि. टी. शाह जयपुर	१३)
जमादार उमरावसिंह भाडावास	११)
राव साहब चौधरी हेवराम जी दौलतपुर	११)
चौधरी हुकमसिंह जी निखरी	११)
लाला अमीचन्द नरसिंहदास भिवानी	११)
चौधरी गणपतसिंह जी यादव पटीकड़ा	११)
लाला सरदारीलाल जी क्लाथ मार्केट दिल्ली	,,
माई गुलाबीदेवी दिल्ली	५)
लाला बनारसीदास दिल्ली	५)
महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी	५)
श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौधरी जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ़ ।	५)
श्रीमान् पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)
रा० ब० लेखनारायण सिंह जी बाढ, पटना	५)
बा० बैजनाथसिंह यनंगयॉग, बर्मा	५)
ठाकुर भूरसिंह खण्डेला, जयपुर	,,
लड़िया बाबा, मन्दिर श्री दादी जी खेतड़ी	,,
सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी	५)
जमादार दीपचन्द जी	५)
लाला ओंकारमल जी कानपुर	५)
लाला हरिश्चन्द्र जी प्रेसहाउस, दिल्ली	,,
बाबू रामस्वरूप गनेश मील ,,	५)
लाला रामेश्वर जी गुप्ता ,,	,,
लाला प्रभुदयाल जी फरुखनगर	,,
त्रिवेणीदेवी धर्मपत्नी लाला रामकरणदास खरक	,,
लाला श्रीराम जी गुप्ता भटियडा	,,
बाबू जयदयाल भार्गव भोड़ाकलां	,,
रा०सा० ला० सेवकराम एम, एल, सी. लाहौर	,,
पं, नानकचन्द एम, एल. सी लाहौर	,,
श्रीमान् धानी चन्द लाहौर	५)
श्रीमती सरस्वती देवी आश्रम रेवाड़ी	५)
श्रीमती दुर्गादेवी भिवानी	५)
डाक्टर कुन्तलकुमारी दिल्ली	५)
हवलदार ठाकरसिंह मूसपुर	५)
सूरजमल सुरोलिया खेतड़ी	५)
भूरसिंह माजरा, अलवर	,,
मोहकमसिंह बाघणकी	,,
ला० इन्द्रसैनजी पुरी, रेवाड़ी	५)
श्री० कृष्ण पुत्र ला० प्रभूदयाल दादरी	५)
ठाकुर बाबुलाल कन्हैयालाल जी मथुरा	५)
श्री हाबानन्द जी वर्मा मथुरा	५)

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. वेदोपदेश		४२५
२. भगवद्भक्ति	[ले० श्री० भोले बाबाजी	४२६
३. होते भव सिन्धु पार (कविता)	[श्री रमाशंकर जी मिश्र	४३३
४. क्या भक्ति और ज्ञान एक है	[ले० श्री बहिन जयदेवी जी	४३४
५. गीता योग शास्त्र है	[ले० श्री भगवान्	४३८
६. दोष न देखना	ले० श्री हीरानन्द ब्रह्मचारी आश्रम	४४१
७. राम नाम क्या है	[ले० श्री शिवदयाल जी	४४३
८. राम भजरे (कविता)	हनुमान प्रसाद शर्मा "सैनिक"	४४३
९. वियोगी	[ले० मदन गोपाल जी "सिंहल"	४४३
१० भगवत् स्मरण	[ले० श्री ब्रह्म जी शास्त्री	४४५
११. काम से राम अत्यन्त दूर है	[ले० श्री स्वामी आत्मानन्द जी	४४७
१२. कलियुग और श्री भगवन्नाम	[ले० श्री पं० राम प्रसाद जी शर्मा	४५०
१३. गोपदेवी लीला	[ले० भक्त श्री मथुरा प्रसाद जी	४५१
१४. ब्रज के अनुकूल (कविता)	[ले० श्रीमती ब्रज कुमारी देवी "विदुषी"	४५३
१५. रुलाये हैं (कविता)	[ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी आश्रम	४५३
१६. सुखमय जीवन	[ले० श्री पं० सनत्कुमार निर्मल	४५३
१७. भजन		४५६

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	"	।=)
३.	वेदोपनिषत्	"	।=)
४.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	"	=)।
५.	ज्ञानधर्मोपदेश	"	=)॥
६	ज्ञान भक्ति योग संग्रह	"	=)॥
७.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	"	।)
८.	सत्य शब्द संग्रह	"	।=)
९.	शब्दसंग्रह	"	=)॥
१०.	सारसंग्रह	"	=)
११.	भाषा फक्किका प्रकाश	"	॥)
१२.	भगवद्भक्तांक	"	॥=)
१३.	भगवदंक	"	॥)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालोंको डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।